मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 33 ● वर्ष 4 ● अंक 5 ● जुलाई 2014 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

मोदी सरकार का एजेण्डा नम्बर 1 – रहे-सहे श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाना 4

जियनवादी नरसंहार, फिलिस्तीनी जनता का महाकाव्यात्मक प्रतिरोध और आज की दुनिया 5

'इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र' की घृणित ग़द्दारी और गरम रोला मज़दूरों का माकूल जवाब 11

मोदी सरकार ने दो महीने में अपने इरादे साफ कर दिये

आम मेहनतकश जनता को आने वाले दिनों में कठिन संघर्षों में जूझने के लिए तैयार रहना होगा

मोदी सरकार का असली एजेंडा दो महीने में ही खुलकर सामने आ गया है। 2014-15 के रेल बजट, केन्द्रीय बजट और श्रम क़ानूनों में प्रस्तावित बदलावों तथा सरकार के अब तक के फैसलों से यह साफ़ है कि आने वाले दिनों में नीतियों की दिशा क्या रहने वाली है। मज़दूर बिगुल के पिछले अंक में हमने टिप्पणी की थी – "लुटेरे थैलीशाहों के लिए 'अच्छे दिन', मेहनतकश जनता के लिए 'कड़े कदम'।" लगता है, इस बात को मोदी सरकार अक्षरश: सही साबित करने में जुट गयी है।

यूपीए सरकार की नीतियों को पानी पी-पीकर कोसने वाली भाजपा सरकार ने पिछली सरकार की आर्थिक नीतियों में कोई बुनियादी बदलाव नहीं किया है। बल्कि देशी-विदेशी पूँजी को फायदा पहुँचाने और जनता की पीठ पर बोझ और बढ़ा देने के इन्तज़ाम किये हैं। रेल बजट पेश करने के पहले ही सरकार ने किरायों में 14.5 प्रतिशत तक की भारी बढ़ोत्तरी कर दी थी। ज़ाहिर है, इसके बाद बजट में और किराया बढ़ाने की कोई ज़रूरत अभी नहीं थी मगर रेल बजट से यह साफ हो गया कि सरकार किसके लिए काम कर रही है। देश के इस सबसे बड़े उद्योग के क्रमश: निजीकरण की जो मुहिम पिछले कई साल से चल रही थी उसे इस बजट में और तेज़ करने का रास्ता खोल दिया गया है। रेल के कई बड़े क्षेत्रों में प्राइवेट-पब्लिक पार्टनरशिप यानी

सम्पादक मण्डल

पब्लिक के पैसे से प्राइवेट के मुनाफ़े की व्यवस्था कर दी गयी है। आने वाले दिनों में इसके नतीजे के तौर पर रेलवे में छँटनी और ठेकाकरण की प्रक्रिया और तेज़ होगी। जहाँ पर करोड़ों आम लोग बेहद बुरी और असुरक्षित स्थितियों में यात्रा करते हों और ज़्यादातर स्टेशनों तथा रेल मार्गों की हालत ख़स्ता हो, वहाँ बुलेट ट्रेन जैसी परियोजना पर अरबों रुपये बरबाद करने से ज़ाहिर है कि सरकार किन्हें खुश करना चाहती है। सिर्फ़ अहमदाबाद से मुम्बई के बीच एक बुलेट ट्रेन चलाने के लिए इस बजट में 60,000 करोड़ रखे गये हैं जबकि सरकार ज़रूरी सुविधाओं के लिए भी संसाधनों की कमी का रोना रोती है।

वित्त मंत्री अरुण जेटली द्वारा प्रस्तुत पहले बजट में कुल मिलाकर यूपीए सरकार की आर्थिक नीतियों की दिशा बरकरार रखी गयी है और पूँजीपतियों तथा खाते-पीते मध्यवर्ग पर और अधिक राहतें लुटायी गयी हैं। दूसरी ओर, आँकड़ों की तमाम बाज़ीगरी के बीच कल्याणकारी योजनाओं के लिए जुबानी जमाख़र्च तो काफी किया गया है मगर वास्तव में उनमें या तो कटौती की गयी है या भविष्य में कटौती के लिए रास्ते खोल दिये गये हैं। यह साफ है कि सरकारी नीतियाँ देशी-विदेशी पूँजी के मुनाफ़े को और बढ़ाने वाले विकास पर केन्द्रित हैं और राज्य की भूमिका को क्रमश: और कम किया जाना है।

देशी-विदेशी पूँजी के हितों का बजट में भरपूर ध्यान रखा गया है। छोटे व्यापारियों को बचाने के लिए खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) पर शोर मचाने वाली भाजपा ने किसी भी देश के लिए संवेदनशील रक्षा क्षेत्र और बीमा क्षेत्र में विदेशी निवेश की सीमा 49 प्रतिशत तक कर दी है और रियल स्टेट में निवेश की शर्तें भी आसान बना दी गयी हैं। संस्थागत विदेशी निवेशकों को टैक्स में कई तरह की छूटें भी दी गयी हैं। देशी पूँजी के फायदे के लिए आधारभूत संरचना में प्राइवेट-पब्लिक पार्टनरशिप की दिशा

(पेज 6 पर जारी)

वज़ीरपुर के गरम रोला मज़दूरों का ऐतिहासिक आन्दोलन

मज़दूरों ने जान लिया है! हक़ लेना है ठान लिया है!

दिल्ली के उत्तर-पश्चिमी हिस्से में वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र में इस्पात उद्योग के गरम रोला मज़दूरों ने 6 जून से एक शानदार लड़ाई लड़नी शुरू की है। गरम रोला के मज़दूरों ने पिछले वर्ष भी 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' के नेतृत्व में एक लड़ाई लड़ी थी और अपनी हड़ताल चलायी थी, जिसके बारे में हमने 'मज़दूर बिगुल' में रपट भी छापी थी। उस लड़ाई में अन्त में मालिकों ने पुलिस और गुण्डों के सहयोग से एक समझौता करवाया था, जिसमें उन्होंने 1500 रुपये की वेतन बढ़ोतरी का वायदा किया था और साथ ही हर वर्ष 1000 रुपये की वेतन बढ़ोतरी देने का भी वायदा किया था। लेकिन कुछ समय बाद ही उन्होंने या तो वेतन बढ़ोतरी की ही नहीं या फिर केवल 1000 रुपये की वेतन बढ़ोतरी की। इसके बाद 2014 के अप्रैल में एक वर्ष पूरा होते ही 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' के नेतृत्व में मज़दूरों ने सभी मालिकों को एक नोटिस भेजते हुए पिछले वर्ष के वायदे की याद दिलायी और 1000 रुपये की वेतन बढ़ोतरी की माँग की। जब जून की शुरुआत तक भी मालिकों ने यह माँग नहीं मानी तो मज़दूरों ने 6 जून को हड़ताल की शुरुआत की।

आन्दोलन का संक्षिप्त घटनाक्रम

हड़ताल की शुरुआत करते हुए मज़दूरों ने मालिकों के समक्ष 1500 रुपये के वेतन बढ़ोतरी की माँग रखी थी। साथ ही 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' के नेतृत्व में मज़दूरों के एक प्रतिनिधि मण्डल ने 11 जून को श्रम आयुक्त, दिल्ली से मुलाक़ात की। श्रम आयुक्त ने उसी दिन क्षेत्रीय उप श्रमायुक्त, नीमड़ी कालोनी को

यह पूरा मसला हल करने हेतु सन्दर्भित कर दिया। 11 जून को ही उप श्रमायुक्त ने सभी मालिकों को इस विषय में नोटिस भेजा और वार्ता के लिए बुलाया। पहली दो तारीख़ों पर मालिक उपस्थित ही नहीं हुए। इसके बाद 19 जून को 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' के दबाव में श्रम विभाग ने औचक निरीक्षण पर लेबर इंस्पेक्टरों को इलाक़े में भेजा जिसमें पता चला कि कोई भी मालिक श्रम क़ानूनों का पालन नहीं कर रहा है। इसके बाद कारख़ाना अधिनियम और औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत सभी मालिकों के चालान काटे गये। इसके बाद मालिकों पर आन्दोलन का दबाव भी बढ़ाया गया। अब तक सभी गरम रोला कारख़ानों में काम पूरी तरह से बन्द हो चुका था। दूसरी तरफ़, क़ानूनी कार्रवाई भी मालिकों के लिए सिरदर्द का विषय बन चुकी थी। इसी बीच मज़दूरों ने पूरे इलाक़े में दो विशाल रैलियाँ भी निकालीं जिसमें 2000 से ज़्यादा मज़दूरों ने शिरकत की। मज़दूरों ने आर्थिक समस्या से लड़ने के लिए 19 जून से ही

(पेज 8 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

पूँजीपतियों को श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाने की और भी बड़े स्तर पर खुली छूट

मज़दूरों को पहले ही श्रम क़ानूनों के तहत अधिकार नहीं मिल रहे, ऊपर से श्रम क़ानूनों को सरल बनाने के नाम पर क़ानूनी तौर पर भी श्रम अधिकार ख़त्म करने की कोशिश हो रही है। जैसाकि हम जानते ही हैं कि राजस्थान की भाजपा सरकार ने पिछले दिनों श्रम अधिकारों पर बड़ा हमला किया है। पहले यह क़ानून था कि 100 से अधिक श्रमिकों को रोज़गार देने वाली कम्पनी को बन्द करने से पहले श्रम विभाग से स्वीकृति लेनी होती थी। राजस्थान सरकार ने इसे बढ़ाकर 300 कर दिया है। मज़दूरों के अधिकारों पर ऐसे हमले करने की तो सभी राज्यों की सरकारों और केन्द्र सरकार की पूरी तैयारी है। पूँजीवादी लेखकों से इसके पक्ष में लेख लिखवाकर श्रम अधिकारों को क़ानूनी तौर पर ख़त्म करने का माहौल बनाया जा रहा है। इसका एक उदाहरण है झुनझुनवाला का 8.7.14 को दैनिक जागरण में छपा लेख। वह लिखता है कि श्रम क़ानूनों का ढीला करने से रोज़गार बढ़ेंगे, मज़दूरों का भला होगा। वह कहता है कि मनरेगा योजना भी ख़त्म कर दी जानी चाहिए और इस पर सरकार के सालाना ख़र्च होने वाले चालीस करोड़ रुपये पूँजीपतियों को सब्सिडी के रूप में देने चाहिए। उसके हिसाब से इस तरीक़े से रोज़गार बढ़ेगा। वह मोदी सरकार को कहता है कि राजस्थान की तरज पर तेज़ी से श्रम क़ानूनों में बदलाव किया जाये। झुनझुनवाला की ये बातें पूरी तरह मुनाफ़ाख़ोरों का हित साधने के लिए हैं। मज़दूर हित की बातें तो महज़ दिखावा है।

1990 के दशक में कांग्रेस सरकार नवउदारवादी नीतियाँ लेकर आयी और मज़दूरों को निचोड़ने के लिए देशी-विदेशी पूँजीपतियों को खुली छूट दी गयी। नवउदारवादी नीतियों के तहत श्रम क़ानूनों में बदलाव होने लगे। श्रम विभागों में अफ़सरों-कर्मचारियों की कमी कर दी गयी। श्रम क़ानून तो पहले ही बहुत लचीचे थे और इनका पहले ही बहुत उल्लंघन होता था। लेकिन अब पूँजीपतियों को श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाने की और भी बड़े स्तर पर खुली छूट दी गयी। उससे भी आगे बढ़कर भाजपा सरकार यह कुकर्म करने पर लगी हुई है। नवउदारवादी नीतियों का नतीजा अमीर-ग़रीब की खाई के और अधिक चौड़ा होने के रूप में निकला; मज़दूरों की ज़िन्दगी बहुत बदतर हो गयी, आमदनी में बहुत कटौती हुई, बेरोज़गारी बहुत बढ़ गयी।

आज कारख़ानों में हालत यह है कि अधिक से अधिक उत्पादन के लिए मज़दूर पर बहुत दबाव डाला जाता है। मज़दूरों के साथ होने वाले हादसे बहुत बढ़ गये हैं। उँगली-हाथ कटना आम बात बन चुकी है। मुआवज़ा भी नहीं मिलता है। न्यूनतम वेतन भी नहीं मिलता। सिंगल रेट में ओवरटाइम करवाया जाता है। फ़ण्ड-बोनस लागू नहीं है। झुनझुनवाला जैसे लेखकों को यह सब दिखायी क्यों नहीं देता! उन्हें दिखायी तो सब देता है, लेकिन पूँजीपतियों का पक्ष लेते हुए वे सच्चाइयों पर परदा डालने की कोशिश करते हैं। लेकिन इन सच्चाइयों को पूँजीपतियों का प्रचार कभी भी ढँक नहीं सकता।

बिगुल में श्रम क़ानूनों के मुद्दे पर काफ़ी अच्छी सामग्री छपी है, जो पूँजीपतियों के दावों की पोल खोलती है। इससे मज़दूरों को पूँजीपतियों की चालों को समझने में मदद मिलती है। मज़दूर वर्ग को अपना क्रान्तिकारी प्रचार मज़बूती से संगठित करना होगा, ताकि पूँजीपति वर्ग के झूठे प्रचार का मुक़ाबला किया जा सके। मज़दूर बिगुल इसमें अच्छी भूमिका अदा कर रहा है।

– **इमान**, लुधियाना

मज़दूर बिगुल यहाँ से प्राप्त करें :

दिल्ली : मज़दूर पाठशाला, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर (योगेश) 09289498250; वज़ीरपुर (सनी) 09873358124; पीरागढ़ी (नवीन) 08750045975; शहीद भगतसिंह लाइब्रेरी, ए ब्लॉक, शाहबाद डेयरी, फ़ोन - 09971158783
गुड़गाँव : (अजय) 09540436262, (राजकुमार) 09919146445
लुधियाना : मज़दूर पुस्तकालय, राजीव गाँधी कालोनी, फ़ोकल प्वाइण्ट थाने के पास, फ़ोन - 09646150249
चण्डीगढ़ : (मानव) 09888808188
लखनऊ : जनचेतना, डी-68, निराला नगर, फ़ोन - 0522-2786782, (सत्यम) 08853093555
गोरखपुर : जनचेतना, 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, फ़ोन - 09455920657
इलाहाबाद : (प्रसेन) 08115491369
पटना : (विशाल) 09576203525
सिरसा : डॉ. सुखदेव हुन्दल की क्लिनिक, सन्तनगर, फ़ोन - 09813192365
मुम्बई : नारायण, रूम नं. 7, धनलक्ष्मी कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी, प्लाट नं. बी-6, सेक्टर 12, खारघर, नवी मुम्बई, फ़ोन - 09619039793

मज़दूर बिगुल 'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :

● डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 फोन : 0522-2786782 ● जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे) ● 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर-273001 ● जनचेतना, दिल्ली – फ़ोन : 09971158783 ● जनचेतना, लुधियाना – फोन : 09815587807

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"
– लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।
यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,
बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।
मनीआर्डर के लिए पता:
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण: **Mazdoor Bigul**
खाता संख्या: **0762002109003787, IFSC: PUNB0076200**
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ
सदस्यता: (वार्षिक) 70 रुपये (डाकखर्च सहित);
(आजीवन) 2000 रुपये
मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फोन: 0522-2786782, 8853093555, 9936650658,
ईमेल: **bigulakhbar@gmail.com**
फेसबुक: **www.facebook.com/MazdoorBigul**

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - 2000/-

कारखाना इलाक़ों से

कारख़ाना मालिक द्वारा एक मज़दूर की बर्बर पिटाई के ख़िलाफ़ लुधियाना के दो दर्जन से अधिक कारख़ानों के सैकड़ों पावरलूम मज़दूरों ने लड़ी पाँच दिन लम्बी जुझारू विजयी हड़ताल

टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन के नेतृत्व में मेहरबान, लुधियाना के दो दर्जन से अधिक पावरलूम कारख़ानों में सैकड़ों मज़दूरों ने एक जुझारू हड़ताल कामयाबी के साथ लड़ी है। 14 जुलाई की शाम से शुरू हुई और 19 जुलाई की दोपहर तक जारी रही यह हड़ताल वेतन वृद्धि, फ़ण्ड, बोनस जैसी आर्थिक माँगों पर नहीं थी बल्कि एक पावरलूम मज़दूर चन्द्रशेखर को मोदी वूलन मिल्ज़ के मालिक जगदीश गुप्ता द्वारा बुरी तरह पीटे जाने के ख़िलाफ़ और मालिक के ख़िलाफ़ सख़्त क़ानूनी कार्रवाई करवाने की माँग पर लड़ी गयी थी।

चन्द्रशेखर ने जगदीश गुप्ता के कारख़ाने से काम छोड़ दिया था। उस कारख़ाने में चन्द्रशेखर के किये काम के पैसे बकाया थे। उसने कई बार मालिक जगदीश गुप्ता से पैसे माँगे लेकिन पैसे नहीं मिले। जगदीश गुप्ता ने पैसे अदा करने की बजाय धमकाया कि अगर पैसों की माँग की तो उसे पुलिस से पिटवायेगा, टाँगें तुड़वा देगा और ग़ायब करवा देगा। चन्द्रशेखर के न मानने पर 14 की शाम को जगदीश गुप्ता और पुलिस वाले चन्द्रशेखर को पकड़कर मेहरबान पुलिस थाने ले गये। वहाँ पर जगदीश गुप्ता ने ख़ुद चन्द्रशेखर को बुरी तरह पीटा। चेहरे पर किये गये हमले से चन्द्रशेखर बेहोश हो गया और अस्पताल में ही होश आया। इस बर्बर पिटाई में उसकी नाक की हड्डी टूट गयी और आँख के ऊपर माथे पर गम्भीर चोटें आयीं। कारख़ाना मालिक द्वारा एक मज़दूर पर किये गये बर्बर जुल्म ने इलाक़े के मज़दूरों को आक्रोश से भर दिया और वे 14 जुलाई की शाम को ही हड़ताल पर चले गये। अन्य मालिकों द्वारा जगदीश गुप्ता का साथ दिये जाने, मज़दूरों की छँटनी की धमकियों, और दिहाड़ियाँ टूटने का नुक़सान झेलते हुए भी मज़दूर हड़ताल पर डटे रहे। पुलिस की मालिकों के साथ बेशर्म मिलीभगत और पुलिस पर राजनीतिक दबाव के चलते पुलिस जगदीश गुप्ता को बचाने में लगी रही। 18 जुलाई की शाम तक तो पुलिस जगदीश गुप्ता के ख़िलाफ़ कोई भी एफ़.आई.आर. दर्ज करने से भागती रही। लेकिन मज़दूरों द्वारा पुलिस थाने पर किये गये ज़बरदस्त धरना-प्रदर्शनों और अन्य इलाक़ों के मज़दूरों में फैलते जा रहे आक्रोश ने पुलिस को इस बात के लिए मजबूर कर दिया कि जगदीश गुप्ता पर 325/506 के तहत एफ़. आई.आर. दर्ज हो। 19 जुलाई को एफ़.आई.आर. की नक़ल हासिल करने के बाद ही जुझारू मज़दूरों ने हड़ताल ख़त्म की। जगदीश गुप्ता दो दिन पहले से ही दिल की किसी बीमारी के कारण सी.एम.सी. अस्पताल के आई.सी.यू. में दाख़िल हो गया था। इस कारण उसकी तुरन्त गिरफ़्तारी नहीं हो सकी।

वास्तव में हड़ताल सिर्फ़ एक मज़दूर के साथ की गयी मारपीट के ख़िलाफ़ और सिर्फ़ एक मालिक के ख़िलाफ़ नहीं थी। यह हड़ताल सभी मालिकों द्वारा उन पर किये जा रहे अत्याचारों, दुर्व्यवहार, लूट, अन्याय के ख़िलाफ़ थी। चन्द्रशेखर को इंसाफ़ दिलाने के लिए लड़े गये संघर्ष के ज़रिये मज़दूरों ने तमाम मालिकों और उनकी सेवक पुलिस-प्रशासन को यह बताया और चेताया है कि वे उनके अत्याचारों, दुर्व्यवहार, लूट, दमन, अन्याय को सहन नहीं करेंगे; कि उन्हें भी एक इंसान की तरह जीने का अधिकार है और यह अधिकार वे लेकर रहेंगे। वेतन, फ़ण्ड, बोनस आदि मुद्दों से आगे बढ़कर मारपीट, दुर्व्यवहार के मुद्दे पर लड़ाई लड़ना एक मज़दूर साथी को इंसाफ़ दिलाने के लिए पाँच दिन तक हड़ताल पर डटे रहना यह मज़दूरों की आगे बढ़ी हुई वर्ग चेतना और राजनीतिक चेतना को दर्शाता है। हालाँकि यह हड़ताल कारख़ाना मालिक पर सख़्त धाराओं तहत एफ़.आई.आर. दर्ज करवाने में सफल हुई है, लेकिन यह इस हड़ताल की मुख्य उपलब्धि नहीं है, बल्कि गौण उपलब्धि है। इस हड़ताल में मज़दूरों ने जिस जुझारू वर्ग चेतना और राजनीतिक चेतना का परिचय दिया है, वह ही मुख्य चीज़ है। टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन और बिगुल मज़दूर दस्ता द्वारा लुधियाना के पावरलूम मज़दूरों के बीच पिछले कई वर्षों से किये जा रहे प्रचार-प्रसार, शिक्षा-दीक्षा, सांगठनिक कार्य, आन्दोलनात्मक गतिविधियों की यह एक बेहद महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

यह विजयी हड़ताल जहाँ अन्य मज़दूरों में भी मालिकों के जुल्मों के ख़िलाफ़ एकजुट होकर लड़ाई लड़ने की प्रेरणा फैलाने का काम करेगी, बल्कि अन्य मालिकों में भी मज़दूर एकता की एक दहशत पैदा करेगी।

– बिगुल संवाददाता

सुब्रत राय सहारा : परजीवी अनुत्पादक पूँजी की दुनिया का एक धूमकेतु

उड़ती ख़बर है कि सुब्रत राय सहाराश्री की पत्नी और बेटे ने मकदूनिया की नागरिकता ले ली है। सुब्रत राय जब जेल से बाहर थे तो अक्सर मकदूनिया जाते रहते थे। अभी तो कबतक तिहाड़ जेल में रहना पड़े पता नहीं। सेबी के ज़रिए जो रकम निवेशकों को लौटानी थी, उसमें आयकर विभाग की देनदारी (10हजार करोड़ रुपये और ब्याज) जोड़कर अब सहारा को 38,000 करोड़ रुपये देने हैं।

यूँ तो पैराबैंकिंग क्षेत्र में पूरे देश में पिछले 40 वर्षों से बड़े-बड़े घोटाले (ताजा मामला सारदा ग्रुप का है) होते रहे हैं, पर सुब्रत राय अपने आप में एक प्रतिनिधि घटना ही नहीं बल्कि परिघटना हैं। सुब्रत राय भारत जैसे तीसरी दुनिया के किसी देश में ही हो सकते हैं, जहाँ अनुत्पादक परजीवी पूँजी का खेल राजनेताओं, भ्रष्ट नौकरशाहों, तरह-तरह के काले धन की संचयी जमातों और काले धन के सिरमौरों की मदद से खुलकर खेला जाता है। लेकिन पूँजी के खेल के नियमों का अतिक्रमण जब सीमा से काफी आगे चला जाता है तो व्यवस्था और बाज़ार के नियामक इसे नियंत्रित करने के लिए कड़े कदम उठाते हैं और तब सबसे "ऊधमी बच्चे" को या तो कोड़े से सीधा कर दिया जाता है या खेल के मैदान से बाहर का रास्ता दिखा दिया जाता है। सुब्रत राय के साथ यही हुआ है।

मगर नवउदारवाद के दौर में एक सुब्रत राय अस्ताचलगामी होंगे तो कई और छोटे-बड़े सुब्रत राय पैदा होते रहेंगे। पूँजीवादी खेल के नियमों को गलाकाटू प्रतिस्पर्धा में लगे अंबानी, अदानी, टाटा, जेपी ग्रुप, जिन्दल, मित्तल, वेदान्ता आदि सभी तोड़ते रहते हैं, पर ज़्यादा से ज़्यादा उन्हे हल्की चेतावनी ही मिलती है। कारण है उनकी उस पूँजी की ताकत जो मुख्यतया मैन्युफैक्चरिंग और बैंकिंग तथा मुख्य धारा के वित्त बाज़ार में लगी है। सहारा ग्रुप ने पैरा बैंकिंग से पैसा निकालकर रीयल एस्टेट,

हाउसिंग, विमानन, मीडिया, मनोरंजन, होटल आदि अनुत्पादक क्षेत्रों में भारी पूँजी लगाई। लगभग इन सभी क्षेत्रों में उसे घाटा ही हुआ, फिर भी पैराबैंकिंग के ज़रिए छोटे निवेशकों को मूँड़कर वह पूंजी का अम्बार जुटाता रहा और इसी अन्धी हवस ने सेबी को विवश किया कि वह संड़सी से कान पकड़कर सुब्रत राय को अदालती कटघरे में खड़ा कर दे। फासिस्टी 'सहारा प्रणाम', दुर्गारूपणी भारत माता की आराधना वाली देशभक्ति, खेल और मनोरंजन की दुनिया की शीर्ष हस्तियों के साथ उत्सव-मस्ती तथा 'सहारा शहर', 'सहारागंज', 'सहारा टावर', जैसे नामकरण आदि के ज़रिए सुब्रत राय "महान साम्राज्य निर्माता" होने के जिस भोड़े 'कल्ट' का प्रहसन खेल रहे थे, उस मंच के पाये-पटरे ही चरमराकर टूट गये। सुब्रत राय दरअसल एक धूमकेतु थे। उनके पास पारम्परिक उद्योगपतियों-व्यापारियों के घरानों की परम्परा की निरन्तरता से प्राप्त शक्ति, संस्कृति और सूझ-बूझ नहीं थी। इस कमी को वह टीम-टाम, शोशेबाज़ी, 'कल्ट' की चकाचौंध और राजनेताओं तथा अन्य महाधानिक हस्तियों से निकटता बढ़ाकर पूरा करना चाहते थे, जो सम्भव ही नहीं था।

सहारा ग्रुप की पूरी संरचना और कार्यप्रणाली पर पिछले दिनों तमाल बन्द्योपाधयाय की चार सौ पृष्ठों की पुस्तक 'डेंजर ऑफ शैडो बैंकिंग' प्रकाशित हुई, जिसे पढ़ना एक दिलचस्प अनुभव है। इस पुस्तक की मुख्य धारा की मीडिया में चर्चा नहीं हुई। इस कथित मुख्य धारा की मीडिया पर जिन इज़ारेदार पूँजीपतियों का कब्ज़ा है, वे इतना तो भाईचारा निभायेंगे ही। सौतेला है, थोड़ा बेऔकात हो गया था, पर है तो अपना भाई ही।

– कात्यायनी

मोदी सरकार का एजेण्डा नम्बर 1 – रहे-सहे श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाना

मोदी सरकार ने देशी-विदेशी लुटेरों के लिए "अच्छे दिन" लाने के अपने वादे को निभाने के लिए उनकी राह में सबसे बड़ी बाधा, यानी देश में मज़दूरों के अधिकारों की थोड़ी-बहुत हिफ़ाज़त करने वाले श्रम क़ानूनों को भी किनारे लगाने की शुरुआत कर दी है। करीब 25 वर्ष पहले जब उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को बड़े पैमाने पर लागू करने की शुरुआत हुई तभी से पूँजीपतियों की संस्थाएँ और उनके भाड़े के क़लमघसीट पत्रकार और अर्थशास्त्री चीख़-पुकार मचा रहे हैं कि श्रम क़ानून पुराने पड़ गये हैं और उन्हें बदल देने का वक़्त आ गया है। इस पूरे दौर में टुकड़े-टुकड़े में श्रम क़ानूनों को बदलने और कमज़ोर करने का सिलसिला जारी रहा है और मज़दूरों के पक्ष में जो कुछ बचे-खुचे क़ानून रह गये हैं वे भी सिर्फ़ कागज़ पर ही हैं। देश के 93 प्रतिशत मज़दूरों के लिए उनका कोई मतलब नहीं रह गया है। श्रम क़ानूनों को लागू करवाने वाली संस्थाओं को एक-एक करके इतना कमज़ोर और लचर बना दिया गया है कि क़ानून के खुले उल्लंघन पर भी वे कुछ नहीं कर सकतीं। लेकिन इतने से भी पूँजीपतियों को सन्तोष नहीं है। वे चाहते हैं कि मज़दूरों को पूरी तरह से उनके रहमो-करम पर छोड़ दिया जाये। जब जिसे चाहे मनमानी शर्तों पर काम पर रखें, जब चाहे निकाल बाहर करें, जैसे चाहे वैसे मज़दूरों को निचोड़ें, उनके किसी क़दम का न मज़दूर विरोध कर सकें और न ही कोई सरकारी विभाग उनकी निगरानी करे। कुल मिलाकर, श्रम "सुधारों" का उनके लिए यही मतलब है। अगर सरकारें अब तक उनकी यह इच्छा पूरी नहीं कर पायी हैं और श्रम क़ानूनों के कुछ चिथड़े बचे रह गये हैं तो केवल इसलिए कि ट्रेड यूनियनों और नक़ली वामपन्थियों की ग़द्दारी के बावजूद देशभर के मज़दूर अपने अधिकारों के लिए बार-बार लड़ते रहे हैं। लेकिन अब देश के सारे बड़े लुटेरों ने मिलकर मोदी सरकार बनवायी इसीलिए है ताकि वह हर विरोध को कुचलकर मेहनत की नंगी लूट के लिए रास्ता बिल्कुल साफ़ कर दे। अपने को 'मज़दूर नम्बर 1' बताने वाला नरेन्द्र मोदी फ़ौरन इस काम में जुट गया है।

केन्द्रीय बजट 2014-2015 के कुछ ही दिन पहले सरकार ने संसद में कहा कि वह पुराने पड़ चुके कारख़ाना अधिनियम, 1948 को बदलने वाली है। श्रम मामलों के राज्य मन्त्री विष्णु देव ने लोकसभा में एक लिखित उत्तर में बताया कि प्रस्तावित संशोधनों में कारख़ानों में महिलाओं की रात की ड्यूटी पर पाबन्दियों को ढीला करना और एक तिमाही में ओवरटाइम की सीमा को 50 घण्टे से बढ़ाकर 100 घण्टे करना शामिल है। हालाँकि हर कोई जानता है कि अभी ज़्यादातर कारख़ानों में मज़दूरों को हर सप्ताह 24 से लेकर 48 घण्टे तक ओवरटाइम करना पड़ता है, और उसके लिए भी उन्हें ओवरटाइम की दर से मज़दूरी न देकर सिंगल रेट पर दी जाती है। अधिकांश प्राइवेट कम्पनियों में दफ़्तरों के कर्मचारी भी रोज़ कई घण्टे ज़बरन ओवरटाइम करते हैं। जब क़ानून ही ढीला कर दिया जायेगा तो समझा जा सकता है कि मालिक किस क़दर मज़दूरों और कर्मचारियों को निचोड़ेंगे।

श्रम क़ानूनों को पूँजीपतियों के हक़ में बदलने की शुरुआत मोदी सरकार बनते ही राजस्थान की वसुन्धरा राजे सरकार ने कर दी थी। राजस्थान की भाजपा सरकार ने फ़ैक्टरी एक्ट 1948, इण्डस्ट्रियल डिस्प्यूट एक्ट 1947 और ठेका क़ानून 1971 को संशोधित करके श्रम क़ानूनों पर हमला बोलने की शुरुआत कर दी है। इन संशोधनों में कम्पनियों को मनचाहे तरीक़े से मज़दूरों को निकालने से लेकर कई तरह की छूटें दी गयी हैं और मज़दूरों के अधिकारों में और कटौती की गयी है। श्रम क़ानून अभी केन्द्र सरकार का विषय है, लेकिन मोदी सरकार के रहते राजस्थान के संशोधनों को राष्ट्रपति की मंज़ूरी मिलने में कोई बाधा नहीं आने वाली है। बल्कि राजस्थान द्वारा किये गये संशोधन केन्द्र सरकार के लिए एक मॉडल का काम करने वाले हैं। फ़ैक्टरी एक्ट के लागू होने की शर्त के रूप में अब मज़दूरों की संख्या को दोगुना कर दिया है। अभी तक फ़ैक्टरी एक्ट 10 या इससे ज़्यादा मज़दूरों (जहाँ बिजली का इस्तेमाल होता हो) तथा 20 या इससे ज़्यादा मज़दूरों (जहाँ बिजली का इस्तेमाल न होता हो) वाली फ़ैक्टरियों पर लागू होता था। अब इसे क्रमशः 20 और 40 मज़दूर कर दिया गया है। इस तरह छोटे फ़ैक्टरी मालिकों की भारी संख्या को फ़ैक्टरी एक्ट के दायरे से बाहर कर दिया गया है। हर कोई जानता है कि मज़दूरों की बहुत बड़ी आबादी आज छोटे-छोटे कारख़ानों या वर्कशॉपों में काम करती है। उदारीकरण के दौर में पूरी दुनिया में पूँजीपतियों ने बड़े कारख़ानों को बन्द कर उत्पादन की कार्रवाई को ढेरों छोटी-छोटी इकाइयों में बाँट दिया है। भारत में कारख़ानों की बहुसंख्या छोटी इकाइयों की है, हालाँकि इनमें से ज़्यादातर इकाइयाँ उत्पादन की एक लम्बी शृंखला में बड़े कारख़ानों से जुड़ी हुई हैं। इन लाखों कारख़ानों में काम करने वाले करोड़ों मज़दूरों पर कौन-सा क़ानून लागू होगा, यह किसी को पता नहीं है। दूसरी तरफ़, इस संशोधन ने एक मालिक के लिए अलग-अलग खाते दिखाकर फ़ैक्टरी एक्ट से बचना बहुत आसान कर दिया है। दिल्ली समेत सभी शहरों के औद्योगिक इलाक़ों में ऐसे कारख़ाने आम बात हैं, जहाँ एक ही बिल्डिंग के भीतर एक ही मालिक की तीन-चार कम्पनियाँ चलती हैं।

दूसरी तरफ़ मज़दूरों के लिए यूनियन बनाना और भी मुश्किल कर दिया गया है। मूल क़ानून के अनुसार किसी भी कारख़ाने या कम्पनी में 7 मज़दूर मिलकर अपनी यूनियन बना सकते थे। फिर इसे बढ़ाकर 15 प्रतिशत कर दिया गया। यानी किसी फ़ैक्टरी में काम करने वाले मज़दूरों का कोई ग्रुप अगर कुल मज़दूरों में से 15 प्रतिशत को अपने साथ ले ले तो वह यूनियन पंजीकृत करवा सकता है। मगर अब इसे बढ़ाकर 30 प्रतिशत कर दिया गया है। मतलब साफ़ है कि अगर फ़ैक्टरी मालिक ने अपनी फ़ैक्टरी में दो-तीन दलाल यूनियनें पाल रखी हैं तो एक नयी यूनियन बनाना बहुत कठिन होगा और फ़ैक्टरी जितनी बड़ी होगी, यूनियन बनाना उतना ही मुश्किल होगा। ठेका क़ानून भी अब 20 या इससे ज़्यादा मज़दूरों वाली फ़ैक्टरी पर लागू होने की जगह 50 या इससे ज़्यादा मज़दूरों वाली फ़ैक्टरी पर लागू होगा। यानी जिस फ़ैक्टरी में 50 से कम मज़दूर काम करते होंगे, उस पर ठेका क़ानून लागू ही नहीं होगा। इसका अंजाम क्या होगा, इसे आसानी से समझा जा सकता है।

एक और ख़तरनाक क़दम के तहत इण्डस्ट्रियल डिस्प्यूट एक्ट 1947 में संशोधन करके अब कम्पनियों को 300 या इससे कम मज़दूरों को निकाल बाहर करने के लिए सरकार से अनुमति लेने से छूट दे दी गयी है, पहले यह संख्या 100 थी। यानी अब किसी पूँजीपति को अपनी ऐसी फ़ैक्टरी जिसमें 300 से कम मज़दूर काम करते हैं, को बन्द करने के लिए सरकार से पूछने की ज़रूरत नहीं है। हालाँकि पूँजीपति पहले भी इस क़ानून को ठेंगे पर रखते थे और मनमाने ढंग से कम्पनियाँ बन्द करके कर्मचारियों को सड़कों पर निकाल फेंकते थे। लेकिन अब वे यह काम बेरोकटोक क़ानूनी तरीक़े से कर सकते हैं। फ़ैक्टरी से जुड़े किसी विवाद को श्रम अदालत में ले जाने के लिए पहले कोई समय-सीमा नहीं थी, अब इसके लिए भी तीन साल की सीमा तय कर दी गयी है।

और बेशर्मी की हद यह है कि ये सब "रोज़गार" पैदा करने तथा कामगारों की काम के दौरान दशा सुधारने तथा सुरक्षा बढ़ाने के नाम पर किया जा रहा है। सरकार का कहना है कि इससे ज़्यादा निवेश होगा तथा ज़्यादा नौकरियाँ पैदा होंगी। असल में कहानी रोज़गार बढ़ाने की नहीं, बल्कि पूँजीपतियों को मज़दूरों की लूट करने के लिए और ज़्यादा छूट देने की है। ये तो अभी शुरुआत है, श्रम क़ानूनों को ज़्यादा से ज़्यादा बेअसर बनाने की कवायद जारी रहने वाली है और पूरे भारत में यही होने वाला है। राजस्थान सरकार द्वारा किये गये संशोधनों के पीछे-पीछे दूसरे राज्य (चाहे सरकार किसी भी पार्टी की हो) भी यही करेंगे, क्योंकि उनके पास भी "रोज़गार" पैदा करने जैसे बहाने मौजूद हैं तथा इससे वे सहमत भी हैं। यदि उन्हें अपने यहाँ पूँजी को रोके रखना है तो अन्य राज्य राजस्थान से भी आगे बढ़कर ज़्यादा मज़दूर-विरोधी संशोधन करेंगे। इस सबके बीच पूँजी का कुल्हाड़ा मज़दूर वर्ग के ऊपर और ज़ोर से चलेगा। बहरहाल पूँजीपति ख़ुश हैं और उनका भोंपू मीडिया इसके पक्ष में माहौल बनाने में जुट गया है। मारुति सुज़ुकी इण्डिया लिमिटेड के चेयरमैन आर.सी. भार्गव ने उनके मन की बात को साफ़ शब्दों में कह दिया है कि श्रम क़ानूनों को ख़त्म करने की दिशा में अभी तो हरकत शुरू हुई है। वे साफ-साफ यह माँग पेश कर रहे हैं कि उन्हें जब चाहे फ़ैक्टरी बन्द करने का अधिकार होना चाहिए। मतलब कि उन्हें फ़ैक्टरी से 300 मज़दूर निकालने या फ़ैक्टरी बन्द करने वाला संशोधन अभी भी कम लग रहा है। इसके लिए ऐसा क़ानून होना चाहिए कि फ़ैक्टरी से मज़दूरों को निकालने या फ़ैक्टरी बन्द करने में कोई भी सरकारी या क़ानूनी दख़ल बिल्कुल न हो।

मोदी सरकार के 100 दिन के एजेण्डे में श्रम क़ानूनों में बदलाव को पहली प्राथमिकताओं में से एक बताया जा रहा है। पूँजीपतियों की तमाम संस्थाएँ और भाड़े के बुर्जुआ अर्थशास्त्री उछल-उछलकर सरकार के इन प्रस्तावित क़दमों का स्वागत कर रहे हैं और कह रहे हैं कि अर्थव्यवस्था में जोश भरने और रोज़गार पैदा करने का यही रास्ता है। कहा जा रहा है कि आज़ादी के तुरन्त बाद बनाये गये श्रम क़ानून विकास के रास्ते में बाधा हैं, इसलिए इन्हें कचरे की पेटी में फेंक देना चाहिए और श्रम बाज़ारों को "मुक्त" कर देना चाहिए। विश्व बैंक ने भी 2014 की एक रिपोर्ट में कह दिया है कि भारत में दुनिया के सबसे कठोर श्रम क़ानून हैं जिनके कारण यहाँ पर उद्योग-व्यापार की तरक्की नहीं हो पा रही है। पूँजीपतियों के नेता बड़ी उम्मीद से कह रहे हैं कि निजी उद्यम को बढ़ावा देने और सरकार का हस्तक्षेप कम से कम करने के पक्षधर नरेन्द्र मोदी इंग्लैण्ड की प्रधानमन्त्री मार्गरेट थैचर या पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन की तर्ज पर भारत में उदारीकरण को आगे बढ़ायेंगे। इनका कहना है कि सबसे ज़रूरी उन क़ानूनों में बदलाव लाना है जिनके कारण मज़दूरों की छुट्टी करना कठिन होता है।

कहा जा रहा है कि बाज़ार में होने वाले उतार-चढ़ाव के हिसाब से पूँजीपति माल का उत्पादन घटाते-बढ़ाते हैं। इसलिए उन्हें इसी हिसाब से मज़दूरों की संख्या को भी मनमर्ज़ी से घटाने-बढ़ाने का अधिकार होना चाहिए। जैसे मज़दूर ज़िन्दा इंसान न होकर कोई कच्चा माल हो जिसे ज़रूरत के हिसाब से कम-ज़्यादा कर लिया जाये! काम से बाहर कर दिये जाने पर मज़दूर और उसका परिवार कैसे जियेगा, इसकी पूँजीपतियों और उनके भाड़े के पैरोकारों को कोई परवाह नहीं होती। उन्हें सिर्फ अपने मुनाफ़े से मतलब होता है।

पूँजीपतियों की लगातार कम होती मुनाफ़े की दर और ऊपर से आर्थिक संकट तथा मज़दूर वर्ग के बढ़ते बग़ावती तेवर से निपटने के लिए पूँजीपतियों के पास आख़िरी हथियार फासीवाद होता है। भारत के पूँजीपति वर्ग के भी अपने इस हथियार को आज़माने के दिन आ गये हैं। फासीवादी सत्ता में आते तो मोटे तौर पर मध्यवर्ग (तथा कुछ हद तक मज़दूर वर्ग भी) के वोट के बूते पर हैं, लेकिन सत्ता में आते ही वह अपने मालिक बड़े पूँजीपतियों की सेवा में जुट जाते हैं। राजस्थान सरकार के ताज़ा संशोधन इसी का हिस्सा हैं। मगर फासीवाद के सत्ता में आने के बाद बात श्रम क़ानूनों को कमज़ोर करने तक ही नहीं रुकेगी, क्योंकि फासीवाद बड़ी पूँजी के रास्ते से हर तरह की रुकावट दूर करने पर आमादा होता है और यह सब वह "राष्ट्रीय हितों" के नाम पर करता है। फासीवादी राजनीति पूँजीपतियों के लिए काम करने, उनका मुनाफ़ा बढ़ाने को देश को "महान" बनाने के तौर पर पेश करती है।

आने वाले दिन मज़दूरों के लिए और भी कठिनाइयाँ लेकर आने वाले हैं। मगर मज़दूर वर्ग इतिहास में हमेशा कठिनाइयों से लड़ते हुए ही मज़बूत हुआ है। आज देशभर में मज़दूर जाग रहे हैं और हक़ों के लिए आवाज़ उठा रहे हैं। ज़रूरत है, एक क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन आन्दोलन खड़ा करने और बिखरे हुए संघर्षों को एकजुट करने की।

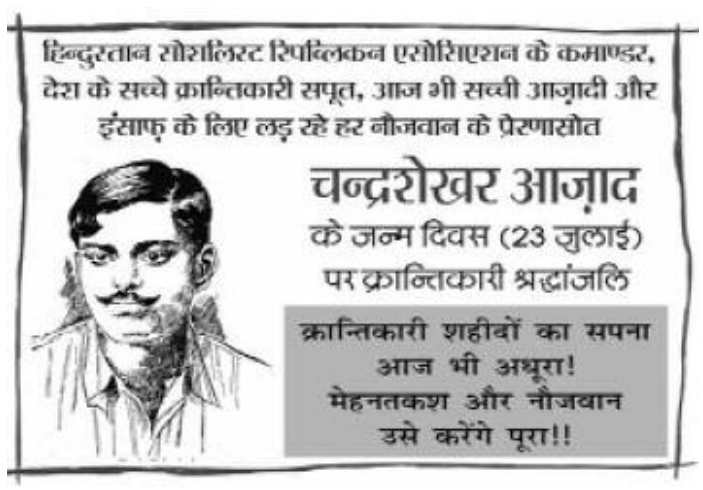

जियनवादी नरसंहार, फिलिस्तीनी जनता का महाकाव्यात्मक प्रतिरोध और आज की दुनिया

कात्यायनी

इज़रायल ने गाज़ा पर बमबारी और तेज़ कर दी है। यह लिखने तक कुल 410 जानें जा चुकी हैं और हज़ारों बुरी तरह घायल और अपंग हो गये हैं जिनमें बड़ी संख्या में बच्चे हैं, लाचार बूढ़े और स्त्रियाँ हैं। जल्दी ही ज़मीनी हमले की भी आशंका है। आधा गाज़ा खण्डहर हो चुका है। जलापूर्ति और बिजली आपूर्ति व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी है। भूख और बीमारियों ने भी हमला बोल दिया है। अब इज़रायल ने एक लाख फिलिस्तीनियों को गाज़ा के उस इलाक़े से हट जाने को कहा है, जहाँ वह सघन बमबारी करने वाला है। गाज़ा की कुल आबादी ही 18 लाख है और पूरे इलाक़े की चारों ओर से नाकेबन्दी की हुई है। ज़ाहिर है एक लाख लोग कहीं और नहीं जा सकते।

अमेरिकी इशारे पर मिस्र ने युद्धविराम का जो प्रस्ताव रखा था वह पूर्ण आत्मसमर्पण का प्रस्ताव था, जिसे हमास ने ठुकरा दिया। पश्चिमी मीडिया इस बात का ख़ूब प्रचार करके यह दिखाने की कोशिश कर रहा है कि गाज़ा की तबाही के लिए हमास की हठधर्मिता ज़िम्मेदार है, लेकिन इसी दौरान हमास ने जो युद्धविराम प्रस्ताव रखा है, उसका पूरी तरह से ब्लैकआउट किया जा रहा है।

हमास के युद्धविराम प्रस्ताव के पाँच बिन्दु हैं : (1) गाज़ापट्टी से आवाजाही के सभी रास्ते खोलकर घेरेबन्दी समाप्त की जाये, (2) मिस्र की सीमा पर स्थित रफ़ाह क्रासिंग को स्थायी तौर पर, 24 घण्टे खुला रखने की शर्त पर इस अन्तरराष्ट्रीय गारण्टी के साथ खोल दिया जाये कि उसे कभी बन्द नहीं किया जायेगा, (3) गाज़ा तक समुद्री जहाज़ों के आने-जाने का का एक गलियारा मुहैया कराया जाये, (4) गाज़ापट्टी के निवासियों को यरुशलम स्थित अल अक्सा मस्जिद में नमाज की इजाज़त दी जाये, और (5) इज़रायल "शालित" समझौते के तहत फिलिस्तीनी बन्दियों की रिहाई के करार पर अमल करे तथा 2012 में मिस्र की मध्यस्थता में फिलिस्तीनी बन्दियों और इज़रायल जेल सेवा के बीच हुए समझौते को लागू करे।

इससे अधिक न्यायसंगत प्रस्ताव भला और क्या हो सकता है? लेकिन जियनवादी हत्यारे इस प्रस्ताव को कूड़े की टोकरी में फेंककर गाज़ा को पूरी तरह तबाह कर देने की तैयारियों में लगे हैं।

इज़रायली हमले का उद्देश्य अगर फिलिस्तीनियों के प्रतिरोध संघर्ष को ख़त्म करना है तो इसमें वह कभी कामयाब नहीं होगा। अगर हमास ख़त्म भी हो गया तो उसकी जगह कोई उससे भी ज़्यादा कट्टरपन्थी संगठन ले सकता है। दूसरी सम्भावना यह भी है कि धार्मिक कट्टरपन्थ के नतीजों को देखने के बाद फिलिस्तीनी जनता के बीच से रैडिकल वामधारा को मज़बूती मिले। लेकिन इतना तय है कि फिलिस्तीनियों का प्रतिरोध संघर्ष थमेगा नहीं। फिलिस्तीन का बच्चा-बच्चा यह जानता है कि अगर उन्होंने लड़ना बन्द कर दिया तो इज़रायल उन्हें नेस्तनाबूद कर देगा।

पश्चिम एशिया के एक छोटे-से इलाक़े में इज़रायल और फिलिस्तीन दो राष्ट्र हैं। यहूदी मूल के लोग इज़रायल से निकलकर पूरी दुनिया में फैले थे। दूसरे महायुद्ध में फासिस्टों द्वारा यहूदियों के क़त्लेआम के बाद उनकी इस माँग को व्यापक समर्थन मिला कि उन्हें अपनी मूल धरती में अपना देश बसाने दिया जाये। उस वक़्त हुए समझौते के मुताबिक़ वहाँ दो देश बनाये गये – इज़रायल और फिलिस्तीन। इज़रायल में मुख्यत: वहाँ रह रही यहूदी आबादी और बाहर से आये यहूदी शरणार्थी बसने थे, जबकि फिलिस्तीन उस क्षेत्र की अरब जनता का देश था। लेकिन इज़रायल ने फ़ौरन ही फिलिस्तीनियों को खदेड़कर उनकी ज़मीन पर क़ब्ज़ा करना शुरू कर दिया और पूरी दुनिया से लाकर अमीर यहूदियों को वहाँ बसाने लगा। पाँच दशकों तक अपने वतन से दरबदर फिलिस्तीनी जनता के लम्बे संघर्ष के बाद उन्हें कटी-पिटी हालत में अपने देश का एक छोटा-सा टुकड़ा मिला। आज का फिलिस्तीन एक-दूसरे से अलग ज़मीन की दो छोटी-छोटी पट्टियों पर बसा है। एक है पश्चिमी तट का इलाक़ा और दूसरा है गाज़ापट्टी जहाँ सिर्फ़ 360 वर्ग किलोमीटर के दायरे में 15 लाख आबादी रहती है। फिलिस्तीनी मुक्ति संगठन (पीएलओ) के नेतृत्व के समझौतापरस्त हो जाने के बाद धार्मिक कट्टरपन्थी संगठन हमास ने फिलिस्तीनी जनता में अपनी जड़ें जमा ली हैं और आज उसे व्यापक आबादी का समर्थन हासिल है – इसलिए नहीं कि फिलिस्तीनी जनता अपनी सेक्युलर सोच छोड़कर कट्टरपन्थी हो गयी है, बल्कि इसलिए क्योंकि इज़रायली जियनवादी फासिस्टों और अमेरिकी साम्राज्यवाद के साथ जनता कभी समझौता नहीं कर सकती और आज सिर्फ़ हमास ही जुझारू तरीक़े से साम्राज्यवाद से लड़ रहा है। कट्टरपन्थी और आतंकवादी तरीक़े दरअसल दशकों से लड़ रही जनता में फैली निराशा और बेबसी की ही अभिव्यक्ति हैं।

जियनवादी हत्यारों की इस वहशी हिमाकत का कारण यह है कि वे जानते हैं कि उनके पीछे दुनिया के सबसे बड़े युद्ध अपराधी अमेरिकी साम्राज्यवाद की ताक़त है, अमेरिकी टट्टू मिस्र का राष्ट्रपति अल सिस्सी भी उसके साथ है, जॉर्डन का शाह भी साथ है और सऊदी अरब, कतर, कुवैत आदि अरब देशों के शेख और शाह स्वयं फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष के दुश्मन हैं। अमेरिका मध्यपूर्व को अपने मनोनुकूल एक नयी डिजाइन में ढालने का काम कर रहा है। इराक़ और लीबिया पर क़ब्ज़ा करके कठपुतली हुकूमतें बैठाना, सीरिया में गृहयुद्ध भड़काना, आई.एस.आई.एस. की नयी ख़िलाफ़त क़ायम करने के मंसूबे को शह देना (हालाँकि यह भी ओसामा की तरह एक भस्मासुर ही साबित होगा अमेरिका के लिए)... यह सब अमेरिका के साज़िशाना प्रोजेक्ट के ही अंग हैं और गाज़ापट्टी पर इज़रायली हमला भी इसी प्रोजेक्ट का अंग है।

फिलिस्तीन मुक्ति संघर्ष के साथ ग़द्दारी सिर्फ़ अरब देशों के शासक वर्ग ही नहीं कर रहे हैं, बल्कि पश्चिमी तट स्थित पी.एल.ओ. की फिलिस्तीनी सरकार और उसके मुखिया महमूद अब्बास भी कर रहे हैं जो एक ओर तो हमास के साथ एकता सरकार बनाने का क़रार कर रहे थे, दूसरी ओर गाज़ा नरसंहार पर जुबानी जमाख़र्च के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर रहे हैं। "नया इस्लामी ख़लीफ़ा" अल बगदादी फिलिस्तीन की मुस्लिम आबादी के क़त्लेआम पर आँख मूँदकर इराक़ में ख़ुद तबाही का मंजर पेश कर रहा है और इस तरह अमेरिका और इज़रायली जियनवादियों का हित साध रहा है। सभी अरब देशों के शासक फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष के दुश्मन हैं, जबकि समूची अरब जनता फिलिस्तीनियों के साथ है। कालान्तर में फिलिस्तीनियों की आज़ादी की लड़ाई और बेशुमार क़ुर्बानियाँ समूचे अरब क्षेत्र में इकट्ठा बारूद की ढेरी में पलीता लगाने का काम करेगी।

पचास, साठ और सत्तर के दशक में जब दुनियाभर के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों की जय-यात्रा जारी थी तो अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका के नवस्वाधीन देशों की बुर्जुआ सरकारें फिलिस्तीनी मुक्ति के पक्ष में पुरज़ोर आवाज़ उठाती थीं। नासिर के प्रभाव वाले सर्वअरब राष्ट्रवाद तथा इराक़ एवं सीरिया के उस दौर के बाथवादी आन्दोलन ने फिलिस्तीनी मुक्ति का पक्ष मज़बूत किया था और समूचा गुट निरपेक्ष आन्दोलन तब फिलिस्तीन के साथ था। इज़रायल तब अमेरिका खेमे के लाख प्रयासों के बावजूद अन्तरराष्ट्रीय मंच पर एकदम अलग-थलग था। 1980 के दशक तक तीसरी दुनिया के बुर्जुआ शासक वर्ग का चरित्र न केवल अपने देशों के भीतर, बल्कि विश्व पटल पर भी जनविरोधी हो चुका था। नवउदारवाद के दौर में, विशेषकर 1990 के बाद, समूची विश्व-व्यवस्था में साम्राज्यवादियों के 'जूनियर पार्टनर' के रूप में व्यवस्थित होने के बाद एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका के इस नये पूँजीवादी देशों की सत्ताओं की विदेश नीति में भी अहम बदलाव आये हैं। अधिकांश देशों के इज़रायल से राजनयिक और व्यावसायिक सम्बन्ध प्रगाढ़ हुए हैं और फिलिस्तीनी मुक्ति के प्रति उनका जुबानी जमाख़र्च भी कम होता चला गया है। 1988-89 के पहले इन्तिफ़ादा और 2002 के दूसरे इन्तिफ़ादा के अतिरिक्त गत 25 वर्षों के घटनाक्रम ने दिखला दिया है कि फिलिस्तीन की जनता सिर्फ़ और सिर्फ अपने बूते पर जियनवादियों के दाँत खट्टे कर रही है।

आने वाले दिनों में भी बढ़ती अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का फिलिस्तीनियों को सीमित लाभ ही मिलेगा, अन्तरराष्ट्रीय राजनय और अन्तरराष्ट्रीय मंचों से उसे कोई विशेष मदद नहीं मिलने वाली। उसे यदि कोई लाभ मिलेगा तो वह दुनियाभर में विकासमान जनसंघर्षों और जनउभारों के नये सिलसिले से ही मिलेगा। जनविद्रोहों का नया सिलसिला पूरब से पश्चिम तक निश्चय ही गति पकड़ेगा। स्वयं विश्व पूँजीवाद ने ही इसकी जमीन तैयार कर दी है। पूँजी अब नवउदारवादी मार्ग से पीछे नहीं हट सकती और दुनिया की बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी के सामने भी जीवन-मृत्यु के संघर्ष के अतिरिक्त कोई और रास्ता नहीं बचा रह जायेगा। विश्व स्तर पर आगे बढ़ती जनक्रान्ति की नयी लहर फिलिस्तीनी जन मुक्ति संघर्ष को नया संवेग देने का काम करेगी। फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष समूचे मध्यपूर्व में अरब जनता को आततायी, अमेरिकी साम्राज्यवाद के पिट्ठू शासकों के विरुद्ध विद्रोह के लिए प्रेरित करती क्षितिज पर जलती एक मशाल के समान है। समूचा अरब जगत एक ज्वालामुखी के दहाने पर बैठा हुआ है। इसी विनाशकारी ख़तरे को देखते हुए अमेरिका और उसके सहयोगी साम्राज्यवादी देश इस पूरे क्षेत्र में विभिन्न कट्टरपन्थी गुटों, शिया, सुन्नी, कुर्द जैसे आपसी विवादों और गृहयुद्धों को हवा दे रहे हैं। लेकिन आम अरब जनता जब उठ खड़ी होगी तो ये सभी विभाजनकारी ताक़तें एकबारगी, एकमुश्त हाशिये पर धकेल दी जायेंगी।

फिलिस्तीन ने एक अलाव जला रखा है, जिसकी आग बुझने वाली नहीं है। समय के साथ, इसे जंगल की आग बनकर पूरे अरब जगत में फैलना ही है।

मोदी सरकार ने गाज़ा नरसंहार पर संसद में चर्चा कराने से इंकार किया

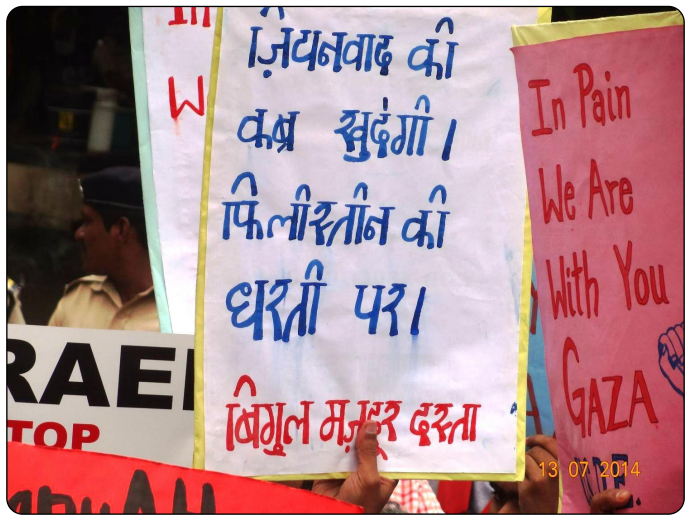

गुजरात के कसाई और गाज़ा के कसाई आपस में भाई-भाई हैं, यह सच्चाई एकदम खुलकर सामने आ गयी। भारत और पूरी दुनिया में गाज़ा नरसंहार विरोधी जनप्रदर्शनों के माहौल को देखते हुए, शर्माशर्मी में, संसद में बैठे विपक्षी दलों ने इज़रायली हमलों के ख़िलाफ़ प्रस्ताव पारित करने की माँग रखी तो भाजपा सरकार ने इसे सिरे से ख़ारिज़ कर दिया। सरकार लगातार बेशर्मी से इस हमले पर चर्चा कराने से भी इंकार कर रही है।

वैसे कांग्रेसी इस मसले पर भला किस मुँह से कुछ बोलेंगे। नवउदारवादी लहर में बहने के बाद, बढ़ते अमेरिकी प्रभाव के दौर में, 1990 के दशक में कांग्रेस सरकार ने ही फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष के साथ विश्वासघात करते हुए इज़रायल के साथ नज़दीकियाँ बढ़ाने की शुरुआत की थी, जिसे अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने आगे बढ़ाया। मनमोहन सिंह की सरकार भी इज़रायल के साथ राजनयिक और व्यापारिक सम्बन्धों को बढ़ाने में लगी रही। यही नहीं, इज़रायल के साथ रक्षा सौदे भी हुए और जासूसी तन्त्र को दुरुस्त करने में भी कुख्यात इज़रायली खुफ़िया एजेंसी मोस्साद की मदद ली गयी।

किसी भी देश की विदेश नीति हमेशा उसकी आर्थिक नीतियों के ही अनुरूप होती है। पश्चिमी साम्राज्यवादी पूँजी के लिए पलक पाँवड़े बिछाने वाली धार्मिक कट्टरपन्थी फासिस्टों की सरकार से यही अपेक्षा थी कि वे ज़ियनवादी हत्यारों का साथ दें।

उन्होंने अपना पक्ष चुन लिया है और हमने भी। जो इंसाफ़पसन्द नागरिक अबतक चुप हैं, वे सोचें कि आने वाली नस्लों को, इतिहास को और अपने ज़मीर को वे क्या जवाब देंगे।

– कविता कृष्णपल्लवी

आम मेहनतकश जनता को आने वाले दिनों में कठिन संघर्षों में जूझने के लिए तैयार रहना होगा

(पेज 1 से आगे)

में बहुत अधिक ज़ोर दिया गया है। इसका सीधा मतलब होता है जनता से जुटाये गये पैसों से निजी पूँजीपतियों को मुनाफ़ा पहुँचाना। बिजली, रियल स्टेट, सड़कें, परिवहन आदि और 100 'स्मार्ट शहर' बनाने जैसी योजनाओं में अधिकांशत: पीपीपी मॉडल लागू करने की बात की गयी है। निजी पूँजी को कई तरीक़े से टैक्स में छूट भी दी गयी है। इसके अलावा बचे-खुचे सार्वजनिक क्षेत्र के भारी हिस्से को औने-पौने दामों पर निजी हाथों में बेचने का इन्तज़ाम कर दिया गया है। सरकारी बैंकों में भी निजीकरण का रास्ता खोल दिया गया है। मोदी सरकार के लिए सबसे बढ़चढ़कर वोट देने वाले मध्य वर्ग को भी बजट में राहत दी गयी है। आयकर में छूट की सीमा बढ़ाने, बचत पर टैक्स में छूट की सीमा में 50 प्रतिशत बढ़ोत्तरी, पीपीएफ में जमा की ऊपरी सीमा 50 प्रतिशत बढ़ाने, करमुक्त हाउसिंग लोन की सीमा बढ़ाने जैसे कई फ़ायदे उसे दिये गये हैं।

लेकिन देश की बहुसंख्यक आम जनता के लिए बचत में कुछ भी नहीं है, उसके लिए बस "राष्ट्र हित" में "त्याग" करने की मजबूरी है। एक ओर आर्थिक संकट के दौर में भी अमीरों की तिजोरियाँ भरी हुई हैं और उनकी ऐयाशियों में कोई कमी नहीं आ रही है, दूसरी ओर आम मेहनतकश लोगों को जीने के लिए ज़रूरी ख़र्चों में भी कटौती करनी पड़ रही है। मँहगाई पहले के सारे रिकार्ड तोड़ रही है और सरकार सिर्फ़ गाल बजाने का काम कर रही है। ऊपर से जनकल्याणकारी योजनाओं पर सब्सिडी को और कम करके पहले से बदहाल जनता की पीठ पर और बोझ डालने की तैयारी कर ली गयी है।

दूसरी ओर, इस बजट में कारपोरेट घरानों को 5.32 लाख करोड़ रुपये की भारी छूट दी गयी है। प्रसिद्ध पत्रकार पी. साईनाथ ने हिसाब लगाकर बताया है कि 2005-06 से अब तक प्रत्यक्ष कारपोरेट आयकर, कस्टम और उत्पाद शुल्क के मद में पूँजीपतियों को 36.5 लाख करोड़ रुपये की छूट दी जा चुकी है। इसमें से छठवाँ हिस्सा केवल कारपोरेट आयकर के रूप में दिया गया है। साईनाथ के अनुमान के मुताबिक इतनी रक़म से राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार योजना (मनरेगा) को वर्तमान स्तर पर 105 वर्ष तक चलाया जा सकता था। या फिर सार्वजनिक वितरण प्रणाली का पूरा ख़र्च 31 साल तक उठाया जा सकता था। मगर पूँजीपतियों की इस खुली लूट पर मीडिया में कहीं सवाल नहीं उठाया गया। दूसरी ओर मनरेगा के लिए वास्तविक अनुदान पहले से भी कम कर दिया गया है। पिछले बजट में इस योजना में 34000 करोड़ दिये गये थे लेकिन पिछली सरकार ने ग्रामीण मज़दूरों को दी जाने वाली क़रीब 5000 करोड़ की राशि रोक ली थी। इस हिसाब से, अगर मुद्रास्फीति को न जोड़ें, तब भी पिछली बकाया राशि को जोड़कर इस वर्ष कम से कम 10,000 करोड़ रुपये अधिक दिये जाने चाहिए थे। मगर इस बार भी केवल 34,000 करोड़ ही आवंटित करने का मतलब है योजना बजट में और अधिक कटौती। यानी सरकार मानकर चल रही है कि गाँव के ग़रीबों के लिए रोज़गार के दिन बढ़ने के बजाय और कम ही होंगे। वैसे भी साल में कम से कम 100 दिन के रोज़गार का वादा तो कहीं भी पूरा नहीं हो रहा है। दूसरे, सरकारी रकम का बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्र में नौकरशाहों, ठेकेदारों, सरपंचों और तहसीलदारों की जेब में ही जाता है। जनता को तो सिर्फ़ जूठन ही मिलती है। अब यह बची-खुची रकम भी कम हो जायेगी।

इस बजट में विनिवेश से, यानी सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को निजी हाथों में बेचकर 63,425 करोड़ रुपये जुटाने का लक्ष्य रखा गया है। तय है कि इस रकम को वापस जनता की सेवा में लगाने की बजाय बड़े उद्योगों के लिए ज़रूरी आधारभूत ढाँचा बनाने पर ख़र्च किया जायेगा। यानी एक्सप्रेस वे और आठ लेन की सड़कें बनाने, बुलेट ट्रेन जैसी अमीरों की मनपसन्द योजनाएँ लागू करने, पूँजीपतियों को सरकारी बैंकों से बेहद कम ब्याज दरों पर कर्ज़ देने, कारपोरेट घरानों की कर्ज़ माफ़ी के लिए रकम जुटाने और नेताशाही-अफ़सरशाही की ऐयाशियों पर यह पूरी रकम ख़र्च की जायेगी, जो वास्तव में इस देश की ग़रीब जनता का पैसा है।

वैसे, उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के पिछले दो दशकों में बजट का कोई ख़ास मतलब नहीं रह गया है। सरकारें बजट के बाहर जाकर पूँजीपतियों को फ़ायदा पहुँचाने वाली ढेर सारी योजनाएँ और नीतियों में बदलाव लागू करती रहती हैं। कई महत्वपूर्ण नीतिगत बदलावों की घोषणा तो सीधे फ़िक्की, एसोचैम या सीआईआई जैसी पूँजीपतियों की संस्थाओं के मंचों से कर दी जाती है। फिर भी बजट से सरकार की मंशा और नीयत तो पता चल ही जाती है।

बुर्जुआ मीडिया में इस बजट का स्वागत करते हुए कहा जा रहा है कि इससे विकास की गति तेज़ करने और रोज़गार बढ़ाने में मदद मिलेगी। यह विकास कैसा होगा इसे नरेन्द्र मोदी के गुजरात मॉडल को देखकर समझा जा सकता है। मोदी ने पिछले 13 वर्षों में गुजरात में जो नीतियाँ लागू कीं, वे वास्तव में फासीवादी नीतियों को का एक मॉडल हैं। भूलना नहीं चाहिए कि मोदी ने एक बार कहा था कि पूरे गुजरात को पूँजीपतियों के लिए एक विशेष आर्थिक क्षेत्र बना दिया जायेगा। यह भी कहा गया था कि गुजरात में श्रम विभाग की कोई ज़रूरत ही नहीं है। बेवजह नहीं है कि पूरा पूँजीपति वर्ग मोदी के पीछे खड़ा था। गुजरात में पूँजीपतियों को लगभग मुफ़्त ज़मीन, लगभग मुफ़्त पानी, कई वर्षों तक टैक्स से छूट, लगभग बिना ब्याज के सैकड़ों करोड़ का कर्ज़, श्रम क़ानूनों को लागू करने से पूरी तरह छूट, और मज़दूरों के आवाज़ उठाने पर उन्हें कुचलने के लिए तैयार बैठी सरकार मिलती है! गुजरात में होने वाले मज़दूर उभारों की ख़बर तक गुजरात के बाहर नहीं जा पाती। मज़दूरों को न्यूनतम मज़दूरी से भी कम मज़दूरी दी जाती है और ज़रा भी चूँ-चपड़ करने पर डण्डे और गोलियाँ बरसाने में कोई कसर नहीं छोड़ी जाती! मोदी के विकास का यही अर्थ है : पूँजीपतियों को बेरोक-टोक ज़बरदस्त मुनाफ़ा, खाते-पीते मध्यवर्ग को चमचमाते शॉपिंग मॉल, 8-लेन एक्सप्रेस हाईवे, मल्टीप्लेक्स हॉल, आदि। और मज़दूरों के लिए "देश और राष्ट्र के विकास" के लिए 15-15 घण्टे कारख़ानों और वर्कशापों में चुपचाप हाड़ गलाना! जो आवाज़ उठायेगा, वह देश का दुश्मन कहलायेगा! "राष्ट्र" के "विकास" का मोदी के लिए अर्थ है पूँजीपतियों का अकूत मुनाफ़ा, खाते-पीते मध्यवर्ग को ढेर सारी सहूलियतें और आम ग़रीब मेहनतकश आबादी के लिए नारकीय और पाशविक जीवन!

मोदी सरकार के शुरुआती दो महीनों ने आने वाले दिनों की तस्वीर बिल्कुल साफ कर दी है। आर.एस.एस. और भाजपा के हुड़दंगियों ने देश के अलग-अलग हिस्सों में अपने उत्पात से यह संकेत भी दे दिया है कि जब जनता अपने अधिकारों के लिए सड़कों पर उतरना शुरू करेगी तो जाति-धर्म-भाषा या किसी भी भावनात्मक मुद्दे को उभारकर ध्यान भटकाने के लिए वे किसी भी हद तक जा सकते हैं।

ऐसे में, मज़दूर वर्ग के आर्थिक और राजनीतिक हितों की रक्षा के लिए एक मज़बूत क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन आन्दोलन की बेहद ज़रूरत है। आज ट्रेड यूनियन आन्दोलन देश की मज़दूर आबादी के करीब 90 फ़ीसदी को समेटता ही नहीं है। संशोधनवादी और संसदीय वामपन्थी पार्टियों की ट्रेड यूनियनें देश के मज़दूरों के महज़ 7-8 प्रतिशत हिस्से की नुमाइन्दगी करती हैं। संशोधनवादी ट्रेड यूनियनें इस छोटे-से हिस्से के वेतन-भत्तों की ही लड़ाई लड़ती हैं। देश की 93 प्रतिशत मज़दूर आबादी जो सबसे अधिक शोषण और लूट की शिकार है, उसे ही मोदी सरकार द्वारा बनायी जा रही "नयी अर्थव्यवस्था" में सबसे अधिक हमलों का निशाना बनना है। इस आबादी के बीच निरन्तर राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रचार के द्वारा फासिस्टों के असली मकसद का भण्डाफोड़ करने और मज़दूरों को संगठित करने की आज बहुत अधिक आवश्यकता है। आने वाले दौर में मज़दूर वर्ग पर बढ़ने वाले हमलों के प्रति अभी से उन्हें सचेत करना होगा और क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनों में संगठित करना शुरू कर देना होगा। फासीवादियों के सबसे अधिक हमले भी मज़दूर वर्ग को झेलने हैं और फासिस्टों को धूल चटाने का काम भी उसे ही करना है। इसके लिए मज़दूर वर्ग को अभी से कमर कसकर तैयार हो जाना चाहिए।

कौन उठाता है करों का बोझ

ज़्यादातर मध्यवर्गीय लोगों के दिमाग में यह भ्रम जड़ जमाये हुए है कि उनके और अमीर लोगों के चुकाये हुए करों की बदौलत ही सरकारों का कामकाज चलता है। प्राय: कल्याणकारी कार्यक्रमों या ग़रीबों को मिलने वाली थोड़ी-बहुत रियायतों पर वे इस अन्दाज़ में गुस्सा होते हैं कि सरकार उनसे कर वसूलकर लुटा रही है।

करों के बोझ के बारे में यह भ्रम सिर्फ़ आम लोगों को ही नहीं है। तमाम विश्वविद्यालयों के अर्थशास्त्र विभागों में भी प्रोफ़ेसरान इस किस्म के अमूर्त आर्थिक मॉडल पेश करते हैं जिनमें यह मानकर चला जाता है कि ग़रीब कोई कर नहीं चुकाते और सिर्फ़ सरकारी दान बटोरते रहते हैं जिसके लिए पैसा अमीरों पर टैक्स लगाकर जुटाया जाता है।

सच्चाई इसके ठीक विपरीत है। हक़ीक़त यह है कि आम मेहनतकश आबादी से बटोरे गये करों से पूँजीपतियों को मुनाफ़ा पहुँचाया जाता है और समाज के मुट्ठीभर उपभोक्ता वर्ग को सहूलियतें मुहैया करायी जाती हैं। टैक्स न केवल बुर्जुआ राज्य की आय का मुख्य स्रोत है बल्कि यह आम जनता के शोषण और पूँजीपतियों को मुनाफ़ा पहुँचाने का एक ज़रिया भी है। सरकार के ख़ज़ाने में पहुँचने वाले करों का तीन-चौथाई से ज़्यादा हिस्सा आम आबादी पर लगे करों से आता है जबकि एक चौथाई से भी कम निजी सम्पत्ति और उद्योगों पर लगे करों से।

भारत में कर राजस्व का भारी हिस्सा अप्रत्यक्ष करों से आता है। केन्द्र सरकार के कर राजस्व का लगभग 70 प्रतिशत से ज़्यादा अप्रत्यक्ष करों से आता है। राज्य सरकारों के कुल कर संग्रह का 95 प्रतिशत से भी ज़्यादा अप्रत्यक्ष करों से मिलता है। इस तरह केन्द्र और राज्य सरकारों, दोनों के करों को मिलाकर देखें तो कुल करों का लगभग 80 प्रतिशत अप्रत्यक्ष कर (बिक्री कर, उत्पाद कर, सीमा शुल्क आदि) हैं जबकि सिर्फ़ 18 प्रतिशत प्रत्यक्ष कर (आयकर, सम्पत्ति कर आदि)।

कुछ लोग तर्क देते हैं कि अमीर या उच्च मध्यवर्ग के लोग ही अप्रत्यक्ष करों का भी ज़्यादा बोझ उठाते हैं क्योंकि वे उपभोक्ता सामग्रियों पर ज़्यादा खर्च करते हैं। यह भी सच नहीं है। लगभग 85 प्रतिशत आम आबादी अपनी रोज़मर्रा की चीज़ों की ख़रीद पर जो टैक्स चुकाती है उसकी कुल मात्रा मुट्ठीभर ऊपरी तबके द्वारा चुकाये करों से कहीं ज़्यादा होती है। इससे भी बढ़कर यह कि आम मेहनतकश लोगों की आय का ख़ासा बड़ा हिस्सा करों के रूप में सरकार और पूँजीपतियों-व्यापारियों के बैंक खातों में वापस लौट जाता है।

उस पर तुर्रा यह है कि सरकार पूँजीपतियों को तमाम तरह के विशेषाधिकार और छूटें देती है। उन पूँजीपतियों को जो तमाम तरह की तिकड़मों, फ़र्ज़ी लेखे-जोखे आदि के ज़रिए अपनी कर-योग्य आय का भारी हिस्सा छुपा लेते हैं। इसके लिए वे मोटी तनख़्वाहों पर वकीलों और टैक्स विशेषज्ञों को रखते हैं। उसके बाद जितना टैक्स उन पर बनता है, उसका भुगतान भी वे प्राय: कई-कई साल तक लटकाये रखते हैं और अकसर उन्हें पूरा या अंशत: माफ़ कराने में भी कामयाब हो जाते हैं।

आम लोगों को शिक्षा, चिकित्सा, आदि के लिए दी जाने वाली सब्सिडियों को लेकर मचाये जाने वाले तमाम शोर-शराबे के बावजूद वास्तविकता यह है कि आज भी भारी पैमाने पर सब्सिडी उद्योगों को दी जाती है। इसके अलावा आम लोगों से उगाहे गये करों से पूँजीपतियों के लाभार्थ अनुसन्धान कार्य होते हैं, उनके प्रतिनिधिमण्डलों के विदेशी दौरे कराये जाते हैं, मुख्यत: उनकी सुविधा के लिए सड़कें और नयी रेलें बिछायी जाती हैं, रेलों में माल ढुलाई पर भारी छूट दी जाती है, आदि। मन्दी की मार से पूँजीपतियों को हुए नुकसान की भरपाई के लिए सरकार ने उन्हें हज़ारों करोड़ रुपये उठाकर दे दिये। उन्हें जो कर चुकाने पड़ते हैं उसकी वसूली भी वे चीज़ों के दाम बढ़कर आम जनता से कर लेते हैं।

पिछले दो दशकों में उदारीकरण की नीतियों के तहत एक ओर जनता पर करों का बोझ तमाम तिकड़मों से बढ़ाया जाता रहा है, दूसरी ओर मीडिया में आक्रामक और झूठ से भरे प्रचार से ऐसा माहौल बनाया गया है मानो देश की आर्थिक दुरवस्था का कारण शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि आदि में दी जाने वाली सब्सिडी ही हो। लेकिन इसकी कीमत पर हर बजट में देशी-विदेशी पूँजीपतियों को तरह-तरह की रियायतें और छूटें परोसी जा रही हैं। सरकारी विशेषज्ञ और बुर्जुआ कलमघसीट दलील दिये जा रहे हैं कि सरकार का काम सरकार चलाना है, स्कूल, रेल, बस और अस्पताल चलाना नहीं, इसलिए इन सबको निजी पूँजीपतियों के हाथों में सौंप देना चाहिए। दूसरी ओर सरकार दोनों हाथों से आम लोगों से टैक्स वसूलने में लगी हुई है।

पंजाब सरकार फासीवादी काला क़ानून 'पंजाब (सार्वजनिक व निजी जायदाद नुक़सान रोकथाम) बिल' लागू करने की तैयारी में

बर्बर फासीवादी क़ानूनों, जेल, दमन से नहीं दबायी जा सकेगी जनता की आवाज़

जनता की हक़, सच, इंसाफ़ की आवाज़ दबाने के लिए पंजाब सरकार ने सन् 2010 में दो काले क़ानून 'पंजाब सार्वजनिक व निजी जायदाद नुक़सान (रोकथाम) बिल-2010' और 'पंजाब विशेष सुरक्षा ग्रुप बिल-2010' पारित किये थे। क्रान्तिकारी-जनवादी संगठनों के नेतृत्व में पंजाब की जनता द्वारा लड़े गये जुझारू संघर्ष के दबाव में सन् 2011 में ये बिल वापिस ले लिये गये थे। गुज़री 9 जुलाई 2014 को हुई कैबिनेट मीटिंग में रद्द किये गये पहले क़ानून की तर्ज पर 'पंजाब (सार्वजनिक व निजी जायदाद नुक़सान रोकथाम) बिल-2014' को मंज़ूरी दी गयी है। सरकार ने कुछ आपत्तिजनक धाराएँ हटाने का दिखावा किया है (जैसे रैली, धरना, प्रदर्शन के लिए लिखित आज्ञा लेने की शर्त हटा दी गयी है) लेकिन काफ़ी कुछ ऐसा जोड़ दिया गया है कि नया क़ानून पहले वाले से भी अधिक ख़तरनाक है। अगर यह क़ानून लागू हो जाता है तो पंजाब के क्रान्तिकारी-जनवादी आन्दोलन को बेहद दमनात्मक हालात का सामना करना पड़ेगा। इस बार सरकार पूरी कठोरता के साथ इस क़ानून को लागू करने की तैयारी में है। इसलिए इसके ख़िलाफ़ लड़ाई भी पहले से सख्त होगी।

'पंजाब (सार्वजनिक व निजी जायदाद नुक़सान रोकथाम) बिल-2014' भारत के सबसे अधिक ख़तरनाक काले क़ानूनों में से एक है। इस क़ानून के मुताबिक़ नुक़सान करने वाली कार्रवाई को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के ग्रुप, संगठन, या किसी पार्टी, चाहे वह सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक हो, की कार्रवाई जैसे ऐजीटेशन, हड़ताल, धरना, बन्द, प्रदर्शन, मार्च, जूलूस, या रेल अथवा सड़क की आवाजाही रोकना आदि, जिसके साथ सरकारी या निजी जायदाद को नुक़सान, घाटा या तबाही हुई हो, नुक़सान करने वाली कार्रवाई माना जायेगा। किसी भी संगठन, यूनियन या पार्टी के एक या अधिक पदाधिकारी, जो इस नुक़सानदायक कार्रवाई को उकसाने, साज़िश करने, सलाह देने, या गाइड करने में शामिल होंगे, नुक़सानदायक कार्रवाई का आयोजक माना जायेगा। सरकार द्वारा एक अथॉरिटी क़ायम की जायेगी जो अपने तय किये गये तरीक़े से तय करेगी कि कितना नुक़सान हुआ है। नुक़सान की पूर्ति दोषी समझे गये व्यक्ति या व्यक्तियों की ज़मीन ज़ब्त करके की जायेगी। इस क़ानून के मुताबिक़ सरकार इन आयोजनों की वीडियोग्राफ़ी करवा सकेगी। नुक़सान का कोई और सबूत न भी हो सिर्फ़ वीडियो ही हो, उस हालत में वीडियो को सार्वजनिक या निजी जायदाद को हुए नुक़सान को तय करने में पूर्ण सबूत माना गया है। हेडकांस्टेबल स्तर के पुलिस मुलाजिम को भी गिरफ़्तार करने का अधिकार दिया गया है। और इस क़ानून के मुताबिक़ किया गया जुर्म ग़ैरजमानती है। इस क़ानून के मुताबिक़ दोषी पाये गये व्यक्ति को तीन साल तक की सज़ा और एक लाख रुपये तक का जुर्माना होगा। आगजनी या विस्फोट से नुक़सानदायक कार्रवाई में दोषी साबित होने वाले व्यक्ति को कम से कम एक साल से लेकर पाँच साल तक की क़ैद की सज़ा होगी और तीन लाख रुपये तक का जुर्माना होगा। इस मामले में अदालत किसी विशेष कारण से सज़ा एक साल से कम भी कर सकती है।

पंजाब (सार्वजनिक व निजी जायदाद नुक़सान रोकथाम) बिल-2014' की इन व्यवस्थाओं से इस क़ानून के घोर जनविरोधी फासीवादी चरित्र का अन्दाज़ा आसानी से लगाया जा सकता है। आगजनी, तोड़फोड़, विस्फोट आदि जैसी कार्रवाइयों के बारे में तो कहने की ज़रूरत नहीं कि ऐसी कार्रवाइयाँ सरकार, प्रशासन, पुलिस, नेता या अन्य कोई जिसके ख़िलाफ़ प्रदर्शन किया जा रहा हो, वे ऐसी गड़बड़ियों को ख़ुद अंजाम देते रहे हैं और देंगे। अब इस क़ानून के ज़रिये सरकार ने पहले ही बता दिया है कि हर गड़बड़ का इलजाम अयोजकों-प्रदर्शनकारियों पर ही लगाया जायेगा। हड़ताल को इस क़ानून के दायरे में रखा जाना एक बेहद ख़तरनाक बात है। इस क़ानून में घाटे शब्द का भी विशेष तौर पर इस्तेमाल किया गया है। हड़ताल होगी तो नुक़सान तो होगा ही। इस तरह हड़ताल करने वालों को, इसके लिए सलाह देने वालों, प्रेरित करने वालों, दिशा देने वालों को तो पक्के तौर पर दोषी मान लिया गया है। बल्कि कहा जाना चाहिए कि हड़ताल-टूल डाऊन को तो इस क़ानून के तहत पक्के तौर पर जुर्म मान लिया गया है।

क्या मौजूदा समय में यह किसी बहस का मुद्दा रह गया है कि ऐसे क़ानून शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के लिए नहीं, सुप्रशासन या साधारण जनता के जानमाल की सुरक्षा के लिए नहीं बल्कि समाज के आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक तौर पर शक्तिशाली पूँजीपति वर्ग की सुरक्षा, उसके हितों की सुरक्षा के लिए ही बनाये जाते हैं। क्या पहले ही सरकार, पुलिस-प्रशासन, न्यायपालिका के घोर ग़ैरजनवादी, घोर जनविरोधी चरित्र में कोई कमी थी? पहले ही क़ानूनी और उससे भी अधिक ग़ैरक़ानूनी ढंगों से जनता पर जो ज़ोर-ज़ुल्म का क़हर ढाया जा रहा था, क्या वह अपने आप में कम था? इस क़ानून के ज़रिये जनता को अधिकारों के लिए संघर्ष करने से रोकने के लिए पूँजीवादी राज्यसत्ता के दन्त-नख और तीखे किये जा रहे हैं।

पंजाब सरकार द्वारा पारित इस क़ानून से इस बात का सहज ही अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि देश के हुक्मरान आने वाले दिनों से कितना भयभीत हैं। व्यापक जनाक्रोश व जनान्दोलनों का भय! जिनके संकेत उन्हें मज़दूर-मेहनतकश जनता रोज़ाना दे रही है। असल में भूमण्डलीकरण, निजीकरण, उदारीकरण की नयी आर्थिक नीतियों के लागू होने से जनता की हालत दिन-ब-दिन बदतर होती चली गयी है। इन आर्थिक नीतियों के कारण मज़दूरों-मेहनतकशों से सारे अधिकार, सुविधाएँ, सहूलियतें छीनी जाती रही हैं। श्रम, रोज़गार, आवास, अनाज, इलाज, शिक्षा आदि बुनियादी ज़रूरतों से सम्बन्धित अधिकारों से जनता लगातार वंचित होती चली आयी है। इन साम्राज्यवादी-पूँजीवादी बर्बर आर्थिक नीतियों ने जनता को आज इतना कंगाल कर दिया है कि देश के 84 करोड़ लोग आज रोज़ाना औसतन महज़ 20 रुपये प्रति व्यक्ति की आमदनी पर गुज़ारा करने पर मजबूर हैं। पूँजीवादी हुक्मरान जानते हैं कि जनता में रोष इतना अधिक बढ़ चुका है कि यह कभी भी ज्वालामुखी की तरह फट सकता है। हुक्मरान सबसे अधिक डरते हैं तो इस गुस्से को संगठित रूप मिलने से। इसे क्रान्तिकारी जनदिशा मिलने से। कोई और समझे न समझे लेकिन पूँजीवादी हुक्मरान अच्छी तरह जानते हैं कि इस तरह के हालात क्रान्तिकारी प्रचार, संगठन, जनान्दोलनों, व परिवर्तन के लिए कितने उर्वरक होते हैं। हुक्मरानों के लिए जनसंघर्षों पर क़ाबू पाना जनतन्त्र के दायरों के भीतर रहते हुए सम्भव नहीं रह गया है। इसीलिए वे जनता को हासिल नाकाफ़ी-से जनवादी संवैधानिक अधिकारों को भी छीनने के लिए घृणित कार्रवाइयों को अंजाम देने पर आ गये हैं। ग़रीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी, महँगाई की सतायी मज़दूर-मेहनतकश जनता को लूट-शोषण-अन्याय के ख़िलाफ़ एकजुट होकर अपने आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक अधिकारों के लिए संघर्ष करने से रोकने के लिए ही ऐसे काले क़ानून बनाये जाते हैं। इस मुनाफ़ाख़ोर व्यवस्था के संकट इतने बढ़ चुके हैं कि अब इसे जनतन्त्र का मुखौटा अधिक से अधिक उतार फेंकने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है।

केन्द्र में मोदी सरकार के गठन के बाद जनता पर पूँजीपति वर्ग का हमला और भी तेज़ हो गया है। श्रम क़ानूनों में मज़दूर विरोधी संशोधन किये जा रहे हैं। मोदी सरकार के आने के बाद महँगाई में अत्यधिक वृद्धि हुई है। करों का बोझ ग़रीब जनता पर और भी अधिक लादा जा रहा है। सब्सिडियों में भारी कटौती हो रही है। इन हालात में 'पंजाब (सार्वजनिक व निजी जायदाद नुक़सान रोकथाम) बिल-2014' जैसे भयानक क़ानूनों के बिना हुक्मरानों की गाड़ी चल ही नहीं सकती। आने वाले समय में अन्य राज्यों में भी या केन्द्रीय स्तर पर ऐसे क़ानून बनना कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी।

लेकिन हुक्मरानों को किसी भी सूरत में जनान्दोलनों से पीछा छुड़ाने में ऐसे क़ानूनों से कोई मदद मिल पायेगी। ये क़ानून जनता का रास्ता कुछ कठिन ज़रूर बना सकते हैं, लेकिन रोक नहीं पायेंगे। इतिहास जनता के गौरवशाली संघर्षों व कारनामों से भरा पड़ा है। जनता ही है जिसने बर्बर से बर्बर राजा-महाराजाओं, सामन्तों, उपनिवेशवादियों, साम्राज्यवादियों को मुँह के बल गिराया, उन्हें मिट्टी में मिलाया। बर्बर क़ानूनों से, जेल, गोली, लाठी से, दुनिया की किसी भी ताक़त से जनता की क्रान्तिकारी भावनाओं, उसकी संगठित इच्छाशक्ति को हरगिज़ दबाया नहीं जा सकता है। अफ़सपा जैसे क़ानूनों से डरकर कश्मीर, मनीपुर सहित उत्तर-पूर्व के अन्य राज्यों की जनता सहमकर हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठी रही। वहाँ की जनता दशकों से अपने अधिकारों के हनन के ख़िलाफ़ लगातार जुझारू संघर्ष लड़ रही है और उसने हुक्मरानों को कभी चैन की नींद नहीं सोने दिया।

पंजाब की मज़दूर-मेहनतकश जनता इस क़ानून से डरकर लड़ाई तो क़तई नहीं छोड़ेगी, बल्कि सरकार को इस क़ानून को रद्द करने के लिए भी मजबूर करेगी, क्योंकि जनवादी अधिकारों का हनन भी क़तई बर्दाशत नहीं किया जा सकता। जनवादी-क्रान्तिकारी संगठनों, मज़दूरों, मेहनतकशों, नौजवानों, छात्रों, जनपक्षधर बुद्धिजीवियों के लिए यह एक बेहद चुनौतीपूर्ण समय है। एक व्यापक जुझारू जनान्दोलन के ज़रिये पंजाब सरकार के फासीवादी क़दमों का मुँहतोड़ जवाब देने के लिए फ़ौरन आगे आना होगा। पूँजीवादी हुक्मरानों का यह खूँखार हमला सिर्फ़ पंजाब की जनता पर नहीं है, बल्कि पूरे देश की जनता पर है। इसलिए पंजाब ही नहीं बल्कि पूरे देश की जनता को भारतीय हुक्मरानों के इस फासीवादी क़दम के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ने के लिए आगे आना होगा।

– लखविन्दर

वज़ीरपुर के गरम रोला मज़दूरों का ऐतिहासिक आन्दोलन

(पेज 1 से आगे)

सामुदायिक रसोई की शुरुआत भी की और अपने हड़ताल-स्थल राजा पार्क में इस रसोई को चलाना शुरू कर दिया। मालिकों का एक हथियार इस क़दम से फ़िलहाली तौर पर बेकार हो गया, जिससे कि वे आमतौर पर मज़दूर संघर्षों को तोड़ने का प्रयास करते हैं। इससे मालिकों पर दबाव और भी बढ़ता गया।

इस दबाव के चलते 27 जून को मालिकों ने श्रम विभाग के

मज़दूरों के बीच बात रखते गरम रोला मज़दूर एकता समिति के सनी

तत्वावधान में और उप श्रमायुक्त की मौजूदगी में 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' के प्रतिनिधि मण्डल से समझौता किया, जिसमें उसने आठ घण्टे के कार्यदिवस, डबल शिफ़्ट में काम, और न्यूनतम मज़दूरी से भुगतान का वायदा किया। लेकिन अगले ही दिन मालिक इस समझौते को लागू करने में आनाकानी करने लगे। नतीजतन, 28 जून को एक कारख़ाने के भीतर उप श्रमायुक्त की मौजूदगी में एक और वार्ता हुई जो आठ घण्टे तक चली और मालिकों को अन्त में फिर से समझौता लागू करने की बात माननी पड़ी। 29 जून से मालिकों को कुछ कारख़ानों में समझौता लागू करना पड़ा, लेकिन ज़्यादातर कारख़ानों में मालिकों ने गुण्डों और पुलिस को बुलवाया और कारख़ानों के दरवाज़ों पर ताला लगा दिया। इसके जवाब में मज़दूरों ने हरेक कारख़ाना गेट को घेर लिया और उन पर ताला लगाना शुरू कर दिया। इसके साथ ही 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' ने कारख़ाना गेट क़ब्ज़ा करने का नारा दिया। 29 जून के इस क़दम के साथ ही 'मज़दूर सत्याग्रह' की शुरुआत हुई, जिसमें मज़दूरों ने श्रम विभाग को चेतावनी दी कि यदि समझौते को लागू कराने के लिए श्रम विभाग ने उचित क़दम नहीं उठाये तो फिर श्रम विभाग का घेराव किया जायेगा। अगले तीन दिनों तक कारख़ाना गेटों पर क़ब्ज़े जारी रहे और कुछ और मालिकों ने समझौते को लागू करना शुरू किया। लेकिन मालिकों के बीच कुछ स्थानीय गुण्डा तत्व भी हैं, जिन्होंने समझौते पर अमल करने से साफ़ तौर पर इंकार किया। 3 जुलाई को एक कारख़ाने के मालिक ने समझौता लागू करवाने के बहाने मज़दूरों को कारख़ाने के भीतर बुलाया और फिर गुण्डों के द्वारा मारपीट करवाकर और धमकाकर उन्हें बन्धक बनाकर काम करवाना शुरू करवा दिया। इस पर सैकड़ों मज़दूरों ने कारख़ाना गेट का घेराव कर दिया। पुलिस की लाख कोशिशों और कुछ साथियों को गिरफ़्तार करने के प्रयासों के बाद भी इस घेराव को भंग नहीं कर पायी। मज़दूरों के दबाव में श्रम विभाग के भी कुछ अधिकारियों को भी वहाँ आना पड़ा। लेकिन जब इन अधिकारियों ने सन्तोषजनक कार्रवाई नहीं की तो करीब हज़ार मज़दूरों का हुजूम मार्च करते हुए उप श्रमायुक्त कार्यालय की ओर बढ़ा। उप श्रमायुक्त कार्यालय पर मज़दूरों को धरना शुरू हुआ, जिसके बाद उप श्रमायुक्त ने स्वयं आकर मामले का समाधान करने का वायदा किया और साथ ही मालिकों को एक 'कारण बताओ नोटिस' जारी किया, जिसमें कि उनसे समझौते को लागू न करने का कारण 7 जुलाई तक बताने के लिए कहा गया। इसके बाद अगले दिन से मज़दूरों ने राजा पार्क में मज़दूर सत्याग्रह के तहत क्रमिक भूख हड़ताल की शुरुआत भी कर दी। इस भूख हड़ताल के कारण जिन कारख़ानों के मज़दूर आन्दोलन में सक्रिय भूमिका नहीं निभा रहे थे, वे भी आन्दोलन स्थल पर आने लगे और हर रोज़ राजा पार्क में विशाल सभाएँ चलने लगीं और सामुदायिक रसोई भी साथ में जारी रहती थी। 7 जुलाई को मज़दूरों के सत्याग्रह का असर हुआ और मालिकों ने श्रम विभाग में फिर से लिखित में वायदा किया कि वे समझौते को लागू करेंगे।

9 और 10 जुलाई को 23 में से 19 गरम रोला कारख़ानों में समझौते को मज़दूरों ने अपनी एकजुटता से लागू करवाया। इसके लिए पिछले दिन ही मज़दूरों की कारख़ाना समितियाँ बनायी गयी थीं और हर कारख़ाने के तीन मज़दूर प्रधान नियुक्त किये गये थे, जोकि इस बात को सुनिश्चित करने के लिए ज़िम्मेदार थे कि कारख़ाने 6 बजे बन्द हो जायें और मालिकों द्वारा गुण्डों या पुलिस को बुलवाने के बावजूद मज़दूर एकजुट होकर 6 बजे शाम को कारख़ानों को बन्द कर दें। इस क़दम का असर अगले दो दिनों में साफ़ नज़र आया। इन दो दिनों में समझौते के अधिकांश कारख़ानों में लागू होने के बाद कुछ मालिकों ने फिर से समझौते का उल्लंघन करना शुरू कर दिया और मज़दूरों को अपनी शुरुआती माँग यानी कि 1500 रुपये की बढ़ोतरी की माँग पर राजी होने के लिए बाध्य करने का प्रयास करने लगे। लेकिन मज़दूर भी अड़ गये, जिसके जवाब में कुछ छोटे मालिकों ने कारख़ानों को बन्द कर दिया। 12 जुलाई को श्रम विभाग में 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' की क़ानूनी सलाहकार शिवानी ने मालिकों द्वारा समझौते पर खुले

उल्लंघन पर आपत्ति दर्ज करायी और माँग की कि यदि श्रम विभाग अगले एक सप्ताह तक दोनों समय एक लेबर इंस्पेक्टर और एक फ़ैक्टरी इंस्पेक्टर को इलाक़े में सुबह 9 बजे से 10 बजे तक और शाम को 6 बजे से 7 बजे तक नहीं भेजेगा और सही समय पर मज़दूरों को कारख़ानों के अन्दर कराने और सही समय पर बाहर कराने को सुनिश्चित नहीं करेगा तो फिर मज़दूरों के पास श्रम विभाग के मुख्य कार्यालय का घेराव करके भूख हड़ताल करने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचेगा। इसके जवाब में श्रम विभाग के संयुक्त श्रमायुक्त वी.एस. आर्या ने दोनों समय पर लेबर इंस्पेक्टर और फ़ैक्टरी इंस्पेक्टर को भेजने की माँग को स्वीकार किया और 13 जुलाई से रोज़ ये निरीक्षक इलाक़े में जाने लगे। लेकिन ये इंस्पेक्टर किसी भी दिन समय पर नहीं पहुँचते थे, जिससे कि मज़दूरों की एण्ट्री के समय को सुनिश्चित नहीं किया जा सका था। दो कारख़ानों के मालिकों ने लेबर इंस्पेक्टर और फ़ैक्टरी इंस्पेक्टर को लिखित में यह बयान दिया कि वे समझौते को लागू नहीं कर सकते और इसकी बजाय वे कारख़ाने को ही बन्द कर देंगे। इस बयान को दर्ज करने के बाद इन निरीक्षकों ने उप श्रमायुक्त से माँग की कि वहाँ एक इंस्पेक्टिंग अफ़सर को भेजा जाये जोकि इन दोनों कारख़ाना मालिकों को क्लोज़र नोटिस दे। लेकिन उप श्रमायुक्त से लेकर संयुक्त श्रमायुक्त ने अभी तक कोई क्लोज़र नोटिस इन मालिकों को नहीं भिजवाया है। इस बीच कई कारख़ानों के मालिकों ने कहीं पर गुण्डों के दबाव से तो कहीं मज़दूरों के बीच आ रही श्रान्ति का इस्तेमाल करते हुए मज़दूरों के सामने उनकी पुरानी माँग यानी कि 1500 रुपये वेतन बढ़ोतरी को स्वीकार किया और कई कारख़ानों में पिछले माह का भुगतान भी इस वेतन बढ़ोतरी के साथ कर दिया। इसके चलते कुछ कारख़ानों के मज़दूरों ने समझौते को लागू करने की माँग पर संघर्ष को जारी रखते हुए 1500 वेतन बढ़ोतरी पर काम शुरू कर दिया।

15 जुलाई तक 23 में से 9 कारख़ानों में समझौते का पालन हो रहा है या सभी मज़दूरों ने हिसाब लेकर कारख़ाना बन्दी करवा दी है। दो कारख़ानों में मज़दूरों ने अपना पूरा हिसाब लेकर बन्दी करवा दी है, जबकि 7 में समझौता लागू किया जा रहा है। अन्य कारख़ानों में मज़दूर आर्थिक समस्या, गुण्डों के दबाव और मालिकों द्वारा आरम्भिक माँग को माने जाने और एरियर समेत पिछले महीने के भुगतान किये जाने के प्रभाव में 1500 वेतन बढ़ोतरी पर फ़िलहाल काम शुरू कर दिया है। लेकिन इन कारख़ानों के मज़दूर भी लगातार समिति के सम्पर्क में बने हुए हैं और अपने-अपने कारख़ाने के भीतर समझौते को लागू करवाने के लिए संघर्ष जारी रखे हुए हैं और इस पक्ष में राय बना रहे हैं। मज़दूरों की आमसभा रोज़ राजा पार्क में जारी है और वहाँ पर आन्दोलन के आर्थिक संकट को हल करने, थकने या टूटने वाले मज़दूरों को फिर से आन्दोलन में लाने की समस्याओं का हल निकाला जा रहा है। 15 जुलाई को 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' की क़ानूनी सलाहकार और लीडिंग कोर की सदस्य शिवानी ने फिर से श्रम आयुक्त जीतेन्द्र नारायण और अतिरिक्त श्रम आयुक्त राजेन्द्र धर से मुलाक़ात की और श्रम विभाग की असन्तोषजनक कार्रवाई पर आपत्ति जतायी और समझौते का उल्लंघन करने वाले मालिकों पर त्वरित और सख़्त कार्रवाई की माँग की। श्रम विभाग ने समझौते का उल्लंघन करने वाले मालिकों पर त्वरित कार्रवाई का वायदा किया है।

अब तक के आन्दोलन के अनुभव बहुत ही वैविध्यपूर्ण रहे हैं और इसकी कई अहम उपलब्धियाँ रही हैं। लेकिन साथ ही आन्दोलन को अपनी कुछ कमियों-कमज़ोरियों से भी निपटना होगा, जिससे कि इसे सफलता के मुकाम तक पहुँचाया जा सके।

सामुदायिक रसोई का प्रयोग

आन्दोलन की सबसे प्रमुख उपलब्धियों में से एक था सामुदायिक रसोई का चलाया जाना। यह पूरे विश्व के मज़दूर आन्दोलन की एक ऐसी परम्परा है, जिसे पिछले लम्बे

(पेज 9 पर जारी)

मज़दूरों ने जान लिया है! हक़ लेना है ठान लिया है!

(पेज 8 से आगे)

समय से मज़दूर आन्दोलनों में भुला-सा दिया गया है। इस आन्दोलन में शिरकत करने वाले मज़दूर असंगठित मज़दूरों की सबसे निचली और सबसे कम मज़दूरी पाने वाली श्रेणी से आते हैं। इनके लिए एक-डेढ़ महीने तक संघर्ष में टिके रहना एक बड़ी चुनौती होती है, क्योंकि दो हफ़्तों में ही आमतौर पर इनकी जमा-बचत समाप्त हो जाती है। इसी कमज़ोरी को आमतौर पर मालिक इन मज़दूरों के आन्दोलनों के विरुद्ध इस्तेमाल करते रहे हैं। लेकिन इस बार मालिक भूख के अपने इस हथियार का इस्तेमाल नहीं कर पाये। मज़दूरों ने अपनी सामुदायिक रसोई चलायी और भूख के कारक को निष्क्रिय कर दिया। इसके लिए मज़दूरों की टोलियों ने पूरे मज़दूर इलाक़ों में ठण्डा रोला, प्रेसिंग और अन्य पेशों के मज़दूरों से अनाज, तेल और आर्थिक सहयोग के रूप में मदद जुटायी और इसके बूते पर सामुदायिक रसोई चलायी। इसी दौरान न सिर्फ़ देशभर से बल्कि दुनियाभर से जनवादी, प्रगतिशील और वामपन्थी संगठनों और साथ ही स्वतन्त्र यूनियनों ने भी संघर्ष को आर्थिक सहायता भेजी, जिसके बूते पर आन्दोलन के तमाम ख़र्चों को वहन करने में पर्याप्त मदद मिली।

मज़दूर पाठशाला

पूरी हड़ताल के दौरान मज़दूरों ने न सिर्फ हर दिन मालिकों, पुलिस, श्रम विभाग, गुंडों और नेताओं-मंत्रियों के चरित्र को समझा व इनके खिलाफ अपनी रणनीति बनायी बल्कि हड़ताल के मंच का प्रयोग मज़दूर वर्ग को संघर्षों के गौरवशाली इतिहास से परिचित कराने के लिए भी किया गया। पेरिस कम्यून की कहानी, अक्टूबर क्रान्ति, स्त्री मज़दूरों की भूमिका से लेकर छत्तीसगढ़ के मज़दूर आन्दोलन व ट्रेड यूनियन के जनवादी तरीकों पर समय-समय पर बिगुल मज़दूर दस्ता, नौजवान भारत सभा, स्त्री मज़दूर संगठन के कार्यकर्ताओं ने बात रखी। हड़ताल के प्रत्येक दिन मंच का संचालन कर रहे बाबूराम व सनी ने गरम रोला मज़दूर एकता समिति के सदस्यों व बिगुल मज़दूर दस्ता के सदस्यों को आन्दोलन व मज़दूर वर्ग के इतिहास पर बात रखने के लिए आमंत्रित किया। मज़दूर बिगुल अखबार के लेखों और इसमें छपी मज़दूरों की चिट्ठियों का सामूहिक पाठ भी होता रहा। वैसे तो हर हड़ताल मज़दूरों के लिए संघर्ष की एक पाठशाला होती है, लेकिन इसके साथ ही लगातार तीन सप्ताह तक इस मज़दूर पाठशाला ने मज़दूरों को राजनीतिक तौर पर सचेत करने का काम किया। संघर्ष के दौरान मज़दूरों की वर्गीय चेतना को उन्नत करने और उन्हें पूँजीवादी व्यवस्था की सच्चाई बताते हुए समाजवाद के बारे में शिक्षित करने की बेहतर स्थितियाँ होती हैं और गरम रोला मज़दूर एकता समिति के नेतृत्व ने इस बात का खास ध्यान रखा।

'इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र' के दलालों और ग़द्दारों को मज़दूरों ने खदेड़ा

आन्दोलन की एक इतनी ही बड़ी उपलब्धि यह थी कि इस आन्दोलन में मज़दूरों ने तमाम दलालों और ग़द्दारों को मार भगाया या फिर उनके लिए दरवाज़े पहले ही बन्द कर दिये। आन्दोलन की शुरुआत में ही मंच से 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' के नेतृत्वकारी निकाय के साथियों रघुराज, सनी और शिवानी ने बार-बार यह घोषणा कर दी थी कि इस आन्दोलन के दरवाज़े स्वयंसेवी संगठनों, चुनावी पार्टियों की ट्रेड यूनियनों, फ़ण्डिंग एजेंसियों आदि के लिए बन्द हैं। बाद में इस विषय में एक सभा में मज़दूरों ने मिलकर एक प्रस्ताव भी पास किया। आन्दोलन के दौरान ही अपने आपको क्रान्तिकारी संगठन बताने वाले एक संगठन 'इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र' ने गरम रोला मज़दूर आन्दोलन को अपनी दलाली और ग़द्दारी से बार-बार तोड़ने का प्रयास किया। यह संगठन पिछले वर्ष भी गरम रोला मज़दूरों के बीच आया था। पिछले वर्ष की हड़ताल के बाद इस संगठन के लोग 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' के प्रमुख सदस्यों पर दबाव डालने लगे कि वे यूनियन दफ़्तर पर 'इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र' का बोर्ड लगायें, यूनियन के प्रमुख साथी उनके संगठन की सदस्यता लें और वे 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' के नेतृत्वकारी निकाय से इजाज़त लिये बग़ैर उनके नाम का इस्तेमाल अपने तमाम पर्चों आदि पर करने लगे। इस पर पहले 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' के लोगों ने सख़्त आपत्ति की। जब 'इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र' ने ये हरक़तें बन्द नहीं कीं, तो फिर 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' ने आधिकारिक तौर पर उनसे रिश्ते तोड़ लिये। इसके बाद पहले तो 'इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र' ने 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' पर ही क़ब्ज़ा जमाने पर कोशिश की जिसमें कि वह नाकाम रहा। इसके बाद, उनका एक कार्यकर्ता मुन्ना प्रसाद 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' के दफ़्तर से तमाम क़ानूनी काग़ज़ात चोरी करके भाग गया। इसके बाद, गरम रोला मज़दूरों ने इनसे पूरी तरह दूरी बना ली। जब 'बिगुल मज़दूर दस्ता' ने 29 जनवरी को गरम रोला मज़दूरों का तत्कालीन मुख्यमन्त्री अरविन्द केजरीवाल के समक्ष प्रदर्शन के लिए आह्वान किया तो अचानक 'इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र' ने भी उसी दिन एक अलग प्रदर्शन का कॉल दिया। इसके जवाब में गरम रोला मज़दूरों ने इंमके के प्रदर्शन का बहिष्कार किया और मुन्ना प्रसाद को इलाक़े से भगा दिया। इसके बाद सीधे इंमके के लोग 6 जून को शुरू हुई हड़ताल में पहुँचे। इस पर समिति ने उन्हें आन्दोलन में समर्थन देने की आज्ञा देने का फ़ैसला किया। लेकिन जल्द ही इंमके के लोगों ने अपनी पुरानी सांगठनिक संकीर्णता दिखाते हुए हर क़ानूनी मज़दूर प्रतिनिधि मण्डल में ज़बरन घुसने और क़ानूनी कार्रवाई को गड़बड़ाने का प्रयास शुरू कर दिया। इसके जवाब में 13 जून को इंमके के लोगों को स्पष्ट कर दिया गया कि वे अब किसी भी प्रतिनिधि मण्डल का हिस्सा नहीं होंगे और न ही उन्हें मंच पर बोलने का अवसर दिया जायेगा; साथ ही, मुन्ना प्रसाद को चेतावनी दी गयी कि वह दो दिनों के भीतर समिति के चोरी किये गये क़ानूनी काग़ज़ातों को वापस कर दे। मुन्ना प्रसाद ने कुछ ही काग़ज़ात वापस किये। इसके बाद, एक प्रकार से इंमके के दो-चार आने वाले कार्यकर्ताओं का आन्दोलन में एक अनकहा बहिष्कार शुरू हो गया। इसके साथ ही इंमके के लोगों ने आन्दोलन के नेतृत्व के बारे में कुत्साप्रचार और आन्दोलन को कमज़ोर करने की कार्रवाइयाँ शुरू कर दीं। पहले 16 जून को इंमके का एक कार्यकर्ता इंस्पेक्शन पर आये लेबर इंस्पेक्टर की गाड़ी में घूमता हुआ पाया गया। इसके बाद, 19 जून को श्रम विभाग में चल रही एक वार्ता के दौरान इंमके के इसी कार्यकर्ता हरीश का लेबर इंस्पेक्टर के पास फ़ोन आया और वह वार्ता के बारे में जानने का प्रयास करने लगा। ग़ौरतलब है कि मालिकों के भी कुछ गुर्गे लेबर इंस्पेक्टरों के पास फ़ोन करके यही पता करने का प्रयास कर रहे थे कि उनके चालान तो नहीं कट रहे, या उन पर कोई सख़्त कार्रवाई तो नहीं हो रही है। लेबर इंस्पेक्टर के पास हरीश के फ़ोन आने को मज़दूरों ने देखा और लेबर इंस्पेक्टर को स्पष्ट कर दिया कि आगे से आन्दोलन के किसी भी मसले पर वह इंमके के हरीश या किसी अन्य सदस्य से कोई बात नहीं करेगा।

इसके बाद, 20 जून की सुबह मज़दूरों ने इंमके के लोगों से जवाबतलब किया और कोई सन्तोषजनक जवाब नहीं मिलने पर इंमके के 5-6 कार्यकर्ताओं को धक्के मारकर राजा पार्क से बाहर खदेड़ दिया। 20 जून के बाद से ही इंमके खुले तौर पर आन्दोलन के नेतृत्व को "धन्धेबाज़" और आन्दोलन को "शर्मनाक समझौते का इन्तज़ार करता हुआ" बताकर आन्दोलन और संघर्षरत मज़दूरों के ख़िलाफ़ कुत्साप्रचार करता रहा और आन्दोलन को कमज़ोर करने की कोशिश करता रहा। इसके बाद 29 जून को जब मज़दूर कारख़ाना गेटों को जाम करके बैठे थे, तो इंमके के ये दलाल एक कारख़ाने के गेट पर पहुँचे और मज़दूरों से मालिकों की शर्तों को मानने की बात समझाने लगे। इसके जवाब में मज़दूर भड़क गये और करीब 100 मज़दूरों ने उन्हें दौड़ा लिया। वे गिरते-पड़ते भागे और पुलिसवालों के पास पहुँच गये। उन्होंने 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के दो लोगों के ख़िलाफ़, जो मज़दूरों के साथ मौजूद थे, और साथ ही समिति के नेतृत्वकारी मज़दूर साथी अम्बिका और एक अन्य मज़दूर साथी मनोज के ख़िलाफ़ पुलिस में रपट लिखा दी। पुलिस ने इन चार साथियों के साथ ही इंमके के दलालों को भी हिरासत में ले लिया। इसके बाद, शाम तक इंमके के लोग यह कोशिश करते रहे कि किसी तरह से आन्दोलनरत साथियों पर पुलिस केस दर्ज हो जाये, लेकिन 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' के वकीलों और क़ानूनी सलाहकारों के प्रयास के चलते पुलिस यह केस नहीं दर्ज कर सकी और शाम को दोनों पक्षों को रिहा कर दिया। आन्दोलन को तोड़ने के इस घिनौने प्रयास के बाद इंमके के लोग कभी वज़ीरपुर इलाक़े में नहीं आये, क्योंकि उन्हें अपने

(पेज 10 पर जारी)

समिति के नेताओं को गिरफ़्तार करने पर मज़दूरों ने पुलिस चौकी का घेराव करके उन्हें छुड़ा लिया।
ऊपर : अपने अगुआ साथियों को गिरफ़्तार करने से रोकने के लिए पुलिस की गाड़ी के आगे लेटे मज़दूर

मज़दूरों ने जान लिया है! हक़ लेना है ठान लिया है!

(पेज 9 से आगे)

सम्भावित हश्र का पता था। लेकिन वे इण्टरनेट पर, फ़ोन के ज़रिये आन्दोलन और आन्दोलन के नेतृत्वकारी साथियों के ख़िलाफ़ घिनौनी कुत्साप्रचार की मुहिम जारी रखे हुए हैं। इसके अलावा एक कारख़ाने डी-3 के दो दलालों रामभुवन और शेरसिंह के साथ मिलकर इन्होंने उस कारख़ाने में आन्दोलन को काफ़ी नुक़सान पहुँचाया और मज़दूरों को हताश करने और तोड़ने की पुरज़ोर कोशिश की। इन निकृष्ट हरक़तों के कारण मज़दूरों ने अपनी आमसभा में निर्णय पास किया कि वज़ीरपुर मज़दूर इलाक़े में इंमके का पूर्ण बहिष्कार किया जायेगा और उन्हें किसी भी राजनीतिक गतिविधि या आन्दोलन में नहीं घुसने दिया जायेगा। मज़दूरों ने इस आन्दोलन से इंमके जैसे दलाल संगठन को बाहर करके भी अपने आन्दोलन को मज़बूत किया। ('इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र' की वज़ीरपुर आन्दोलन में दलाली पर इसी अंक में एक अन्य विस्तृत लेख भी देखें–सं.)

पुलिस हस्तक्षेप बेअसर!

आन्दोलन की एक अन्य बड़ी उपलब्धि थी पुलिस हस्तक्षेप को पूर्णत: बेअसर कर देना। आन्दोलन के दौरान दो-दो बार यूनियन के सदस्यों या नेतृत्वकारी साथियों को पुलिस ने हिरासत में लिया। लेकिन इससे पहले कि कोई प्राथमिकी दर्ज हो पाती या कोई केस शुरू हो पाता, मज़दूरों ने पुलिस चौकी का घेराव करके अपने साथियों को जनबल के बूते छुड़ा लिया। पिछले वर्ष के आन्दोलन में यह नहीं हो सका था, जिससे आन्दोलन को कुछ नुक़सान भी उठाना पड़ा था, लेकिन इस बार मज़दूरों का जुझारूपन और राजनीतिक चेतना का स्तर पहले के मुकाबले उन्नत हो चुका था और सही नेतृत्व और सही राजनीतिक विचार की मौजूदगी के बूते 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' ने अपने गिरफ़्तार साथियों को दो-दो बार पुलिस की गिरफ़्त से छुड़ा लिया। इसके अलावा भी पुलिस ने कई बार नेतृत्वकारी साथियों को हिरासत में लेने की नाकाम कोशिश की। रघुराज और शिवानी को पुलिस ने बार-बार गिरफ़्तार करने के कोशिश की, लेकिन इसमें नाकाम रही। एक दिन एक मज़दूर साथी की गिरफ़्तारी के बाद सैकड़ों मज़दूर पुलिस की वैन के सामने लेट गये और उसे जाने नहीं दिया। अन्तत: पुलिस को मज़दूर साथी को तुरन्त ही छोड़ना पड़ा। मालिकों ने नेतृत्व के चार साथियों – शिवानी, रघुराज, नवीन और फिरोज़ के ख़िलाफ़ अदालत से यह निषेधाज्ञा भी ली कि वे कारख़ानों के 100 मीटर की दूरी में नहीं जायेंगे। लेकिन इस निषेधाज्ञा के बावजूद कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा और नेतृत्व के ये साथी पहले की तरह आन्दोलन को नेतृत्व देते रहे।

'कारख़ाना गेट क़ब्ज़ा करो' अभियान

एक अन्य बड़ी उपलब्धि थी कारख़ाना गेटों को क़ब्ज़ा करने का आन्दोलन। यह प्रयोग भी दुनियाभर के मज़दूर आन्दोलनों की एक समृद्ध विरासत है, जिसकी लम्बे समय से कोई मिसाल नहीं मिल रही थी। वज़ीरपुर के गरम रोला मज़दूरों ने दो दिनों तक कारख़ाना गेटों पर ताला मारकर उस पर क़ब्ज़ा जमाया और पुलिस के ताला तोड़ने के बाद भी बार-बार कारख़ाना गेटों पर ताले लटकाये। इस क़दम से मालिकों में भय की लहर दौड़ गयी थी और कुछ ही दिनों में कई मालिकों ने कम-से-कम फ़ौरी तौर पर समझौते को लागू करने पर रज़ामन्दी दे दी थी। कारख़ाना गेटों पर क़ब्ज़ा करने के प्रयोग के दौरान मज़दूरों के बीच राजनीतिक शिक्षण अभियान भी चलाया गया और उन्हें बताया गया कि कारख़ाना अधिनियम में भी मालिकों को कारख़ाने का 'क़ब्ज़ाकर्ता' बताया गया है। अगर यह 'क़ब्ज़ाकर्ता' क़ानूनों का पालन करते हुए कारख़ाना नहीं चला सकता है तो फिर क़ब्ज़ा मज़दूरों को सौंप दिया जाना चाहिए या फिर सरकार को कारख़ाने को अधिग्रहीत करके चलाना चाहिए। अगर सरकार ऐसा नहीं करती तो यह मज़दूरों का नैतिक अधिकार बनता है कि वे कारख़ाने पर क़ब्ज़ा कर लें और उत्पादन से एक हिस्सा लाभांश के तौर पर मालिकाना अधिकार रखने वाले व्यक्ति को दें। साथ ही, यह लाभांश भी स्थायी रूप से नहीं दिया जाना चाहिए, क्योंकि जिस आरम्भिक पूँजी से मालिक ने कारख़ाना लगाया, उससे अधिक लाभांश होते ही मालिक को उसकी आरम्भिक पूँजी प्राप्त हो जायेगी। उसके बाद मज़दूरों को कारख़ाना अपने क़ब्ज़े में रखना चाहिए और उसे अपने सामूहिक मालिकाने के तहत रखना चाहिए, क्योंकि उत्पादन करने वाले के तौर पर मालिकाने पर भी उन्हीं का हक़ बनता है। यह राजनीतिक शिक्षण केवल एक आन्दोलन के लिए महत्व नहीं रखता है, बल्कि मज़दूर वर्ग को आगे के अपने ऐतिहासिक कार्यभार से अवगत कराने के मद्देनज़र भी अहम है।

पेशापारीय और इलाक़ाई मज़दूर वर्ग एकजुटता और श्रम विभाग को कार्रवाई पर बाध्य करना

आन्दोलन के दौरान मज़दूरों ने अन्य पेशों के मज़दूरों को भी अपने साथ लिया और आगे ठण्डा रोला और प्रेसिंग के मज़दूरों के मुद्दों को लेकर भी संघर्ष करने का संकल्प लिया। वास्तव में, यह रपट लिखे जाने तक ठण्डा रोला मज़दूरों की अलग समिति के निर्माण की प्रक्रिया में दो मीटिंगें हो चुकी हैं और 16 जुलाई को अगली मीटिंग रखी गयी है, जिसमें माँगें और संघर्ष शुरू करने का समय निर्धारित होगा। इसके अलावा, मज़दूरों ने इस आन्दोलन के दौरान सोये पड़े रहने वाले श्रम विभाग को भी जागने और सक्रिय होकर कार्रवाई करने पर मजबूर कर दिया। वास्तव में, इसके बावजूद इस पूरे मसले में जो विलम्ब हो रहा है, उसका असल कारण यह है कि भारत में श्रम क़ानून और उनके कार्यान्वयन की पूरी मशीनरी इस कदर लचर है कि कहीं पर अगर ज़बर्दस्त मज़दूर आन्दोलन के कारण श्रम विभाग कुछ कार्रवाई करने भी लगे तो भी वह क़ानून के दायरे में रहते हुए मालिकों पर कोई सख़्त या त्वरित कार्रवाई नहीं कर पाता है। मिसाल के तौर पर, अगर कारख़ाना अधिनियम के तहत न्यूनतम मज़दूरी और कार्यदिवस के क़ानून के पालन न करने पर किसी मालिक का चालान कटता है तो उसमें 2 लाख रुपये का जुर्माना या/और छह माह की क़ैद का प्रावधान है, लेकिन इसका मुकदमे में फ़ैसला होने में महीनों लग जाते हैं; अगर औद्योगिक विवाद क़ानून के तहत मालिक किसी क़ानूनी समझौते का उल्लंघन करता है तो उसके ऊपर धारा 29 के तहत मुकदमा चलता है, लेकिन इसमें सज़ा भी कुछ हज़ार रुपये के जुर्माने की है और उसका फ़ैसला होने में भी समय लगता है। अगर कोई लेबर इंस्पेक्टर किसी कारख़ाने का इंस्पेक्शन करना चाहे तो वह सीधे नहीं कर सकता है, उसके पहले उसे पूरी लाल फीताशाही से गुज़रना पड़ता है, और उसके बाद भी यह आज्ञा उसे मिल जायेगी इसकी कोई गारण्टी नहीं है। अगर श्रम विभाग को किसी कारख़ाने में सभी श्रम क़ानूनों के उल्लंघन का स्पष्ट प्रमाण भी मिल जाये तो उसके पास कारख़ाना सील करने का अधिकार नहीं है, यह अधिकार केवल अदालत के पास है! अदालत में ऐसे सभी मसलों पर फ़ैसला आने में कभी महीनों तो कभी वर्षों लग जाते हैं। इनकी तुलना अगर सम्पत्ति से जुड़े क़ानूनों से करें तो हम पाते हैं कि उनमें "अपराध" करने वाले पर तुरन्त कार्रवाई करने का प्रावधान है। मिसाल के तौर पर, अगर मज़दूर किसी कारख़ाने पर क़ब्ज़ा कर लें तो ट्रेस्पासिंग विरोधी क़ानून के तहत उन्हें तुरन्त हिरासत में लिया जा सकता है और उन पर तत्काल मुकदमा चलाया जा सकता है; अगर निजी सम्पत्ति पर किसी भी प्रकार का अतिक्रमण हो तो अतिक्रमण करने वाले पर तुरन्त कार्रवाई का प्रावधान है। लेकिन अगर कोई मालिक रोज़ाना श्रम क़ानूनों को अपने पैरों तले रौंदता हो तो उसके लिए पूरी क़ानूनी कार्रवाई को ऐसा भारी-भरकम, लम्बा और अनिश्चयपूर्ण बनाया गया है कि आमतौर पर तो एक ग़रीब मज़दूर उस पूरी कार्रवाई को फॉलो कर ही नहीं पाता, और अगर कर भी ले तो फ़ैसला उसके पोतों के ज़माने में आता है या फिर आता ही नहीं है!

श्रम विभाग के कार्यालय पर मज़दूरों का प्रदर्शन

वज़ीपुर मज़दूर आन्दोलन के दौरान गरम रोला मज़दूरों ने राज्यसत्ता के इस पूरे चरित्र को भी एक हद तक समझा है। चाहे वह श्रम विभाग हो, पुलिस हो, या अदालतें हों, मज़दूर यह समझ रहे हैं कि पूरी राज्यसत्ता की वास्तविक पक्षधरता क्या है, उसका वर्ग चरित्र क्या है और मज़दूर आन्दोलन केवल क़ानूनी सीमाओं के भीतर रहते हुए ज़्यादा कुछ हासिल नहीं कर सकता है। आन्दोलन के पूरे होने पर हम एक और विस्तृत रपट 'मज़दूर बिगुल' में पेश करेंगे और आन्दोलन की सकारात्मक और नकारात्मक शिक्षाओं पर विस्तार से अपनी बात रखेंगे। अभी आन्दोलन जारी है और हम उम्मीद करते हैं कि यह आन्दोलन अपने मुकाम तक पहुँचेगा।

– बिगुल संवाददाता, दिल्ली

हरेक हड़ताल पूँजीपतियों को याद दिलाती है कि वे नहीं, वरन मज़दूर, वे मज़दूर वास्तविक स्वामी हैं, जो अधिकाधिक ऊँचे स्वर में अपने अधिकारों की घोषणा कर रहे हैं। हरेक हड़ताल मज़दूरों को याद दिलाती है कि उनकी स्थिति असहाय नहीं है, कि वे अकेले नहीं हैं। ज़रा देखें कि हड़तालों का स्वयं हड़तालियों पर तथा किसी पड़ोस की या नज़दीक की फ़ैक्टरियों में या एक ही उद्योग की फ़ैक्टरियों में काम करने वाले मज़दूरों, दोनों पर कितना ज़बरदस्त प्रभाव पड़ता है। सामान्य, शान्तिपूर्ण समय में मज़दूर बड़बड़ाहट किये बिना अपना काम करता है, मालिक की बात का प्रतिवाद नहीं करता, अपनी हालत पर बहस नहीं करता। हड़तालों के समय वह अपनी माँगें ऊँची आवाज़ में पेश करता है, वह मालिकों को उनके सारे दुर्व्यवहारों की याद दिलाता है, वह अपने अधिकारों का दावा करता है, वह केवल अपने और अपनी मज़दूरी के बारे में नहीं सोचता, वरन अपने सारे साथियों के बारे में सोचता है, जिन्होंने उसके साथ-साथ औज़ार नीचे रख दिये हैं और जो तक़लीफ़ों की परवाह किये बिना मज़दूरों के ध्येय के लिए उठ खड़े हुए हैं। मेहनतकश जनों के लिए प्रत्येक हड़ताल का अर्थ है बहुत सारी तक़लीफ़ें, भयंकर तक़लीफ़ें, जिनकी तुलना केवल युद्ध द्वारा प्रस्तुत विपदाओं से की जा सकती है – भूखे परिवार, मज़दूरी से हाथ धो बैठना, अक्सर गिरफ़्तारियाँ, शहरों से भगा दिया जाना, जहाँ उनके घरबार होते हैं तथा वे रोज़गार पर लगे होते हैं। इन तमाम तक़लीफ़ों के बावजूद मज़दूर उनसे घृणा करते हैं, जो अपने साथियों को छोड़कर भाग जाते हैं तथा मालिकों के साथ सौदेबाज़ी करते हैं। हड़तालों द्वारा प्रस्तुत इन सारी तकलीफ़ों के बावजूद पड़ोस की फ़ैक्टरियों के मज़दूर उस समय नया साहस प्राप्त करते हैं, जब वे देखते हैं कि उनके साथी संघर्ष में जुट गये हैं।

– लेनिन

वज़ीरपुर गरम रोला मज़दूर आन्दोलन में 'इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र' की घृणित ग़द्दारी और गरम रोला मज़दूरों का माकूल जवाब

बिगुल संवाददाता

ज्ञात हो कि वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र, दिल्ली के गरम रोला कारख़ानों के इस्पात मज़दूर पिछले करीब डेढ़ माह से आन्दोलनरत हैं। इन मज़दूरों ने पिछले वर्ष भी 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' के नेतृत्व में एक आन्दोलन किया था, जिसमें अन्त में मालिकों ने हर वर्ष 1500 रुपये की वेतन बढ़ोत्तरी का वायदा किया था, हालाँकि पिछले वर्ष की वेतन बढ़ोत्तरी के वायदे को या तो ज़्यादातर मालिकों ने लागू ही नहीं किया था या फिर आंशिक तौर पर लागू किया था। पिछले वर्ष मालिकों ने पुलिस और गुण्डों की मदद से समिति के नेतृत्व पर एक समझौता थोपने का प्रयास किया था। इस बार भी पुलिस और गुण्डों की मदद से मालिकों ने कई बार मज़दूरों को तोड़ने और उनके आन्दोलन को बिखराने का प्रयास किया, लेकिन मज़दूरों ने उनकी एक न चलने दी। मज़दूरों ने कई बार शुद्ध जनबल के बूते अपने साथियों को पुलिस की हिरासत से रिहा करा लिया, जबकि दो बार सड़कों पर गुण्डों का भी उचित इलाज किया। जब मालिक गुण्डों और पुलिस के बूते भी आन्दोलन को नहीं तोड़ पाया तो उसने मज़दूरों की पुरानी माँग को मानने और जारी महीने का भुगतान 1500 रुपये बढ़ोत्तरी करके करने का रास्ता अपनाया। लेकिन अब मज़दूर भी 27-28 जून के क़ानूनी समझौते से नीचे किसी चीज़ के लिए तैयार नहीं हैं। कई कारख़ाने बन्द हो चुके हैं, कइयों ने समझौते को लागू कर दिया और कुछ अपराधी किस्म के मालिकों के कारख़ानों में गुण्डों की फौज़ तैनात करके ज़बरन काम कराने का प्रयास किया जा रहा है। आन्दोलन जारी है और मज़दूर लड़ रहे हैं, ठीक उसी प्रकार जिस जुझारूपन के साथ वे 6 जून से लड़े, अपनी सामुदायिक रसोई चलायी, कारख़ाना गेटों पर ताले मारे, पुलिस और गुण्डों को खदेड़ा।

लेकिन मज़दूरों की इस आन्दोलन में सबसे बड़ी जीत यह थी कि 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' के नेतृत्वकारी निकाय ने सभी मज़दूरों के बीच इस प्रस्ताव को पास कराया कि कोई भी स्वयंसेवी संगठन, चुनावी पार्टी की यूनियनें या फिर दलाल संगठन इस आन्दोलन में नहीं घुस सकते हैं और उनके लिए पहले से ही दरवाज़े बन्द हैं। मज़दूरों ने अपनी सभा में यह निर्णय पास किया कि ऐसे संगठनों को आन्दोलन में शुरू से ही नहीं घुसने दिया जायेगा, ताकि वे आन्दोलन को दीमक के समान खा न सकें। इस आन्दोलन में 'इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र' नामक एक संगठन की ग़द्दारी और दलाली को मज़दूरों ने बेनक़ाब किया और उन्हें आन्दोलन से खदेड़कर बाहर कर दिया। यह इस आन्दोलन की बड़ी उपलब्धियों में से एक था।

पिछले वर्ष जब गरम रोला मज़दूरों ने हड़ताल की थी, तो उस दौरान 'इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र' नामक संगठन भी समर्थन करने के लिए आन्दोलन में आया था। मज़दूरों की पहल से बनी 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' में भी 'इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र' (इंमके) के लोगों को जगह दी गयी थी। हड़ताल के समाप्त होने के बाद से ही इंमके के लोगों ने 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' को अपना जेबी माल बनाने की कोशिश शुरू कर दी थी। अपने सांगठनिक संकीण स्वार्थ में अन्धे इंमके के लोगों ने 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' (यहाँ से 'समिति') के नेतृत्वकारी लोगों पर इस बात के लिए दबाव डालना शुरू कर दिया था कि समिति के दफ़्तर पर लगने वाले बोर्ड पर इंमके का नाम लिखा जाये, नेतृत्वकारी मज़दूर इंमके के भी सदस्य बनें और साथ ही उन्होंने समिति के अन्य मज़दूरों से सहमति लिये बग़ैर समिति के नाम से पर्चे निकालने भी शुरू कर दिये थे। इसका मज़दूरों ने पुरज़ोर विरोध किया और स्पष्ट कर दिया कि इस तरह की हरक़तों को बर्दाश्त नहीं किया जायेगा। इसके बाद नवम्बर 2013 में इंमके ने फिर से एक पर्चा निकाला, जिस पर बिना इजाज़त के समिति के नाम का इस्तेमाल किया। इसके बाद समिति के नेतृत्वकारी मज़दूरों ने अधिकारिक तौर पर इंमके से रिश्ता तोड़ लिया था। इसके बाद, इंमके के लोगों ने गरम रोला मज़दूरों की एकजुटता को तोड़ने के लिए एक इस्पात मज़दूरों का अलग मंच बनाने का भी प्रयास किया। लेकिन यह प्रयास सफल नहीं हो पाया। इसके बाद वे समिति में ही फूट डालने का प्रयास करने लगे। इस प्रयास के भी असफल होने के बाद इंमके वज़ीरपुर के गरम रोला मज़दूरों के बीच अप्रासंगिक हो चुका था। लेकिन इसके बावजूद अपनी निकृष्टता दिखाते हुए इंमके के एक व्यक्ति मुन्ना प्रसाद ने इंमके के दफ़्तर से तमाम क़ानूनी काग़ज़ात चुरा लिये और भाग गया। मज़दूरों में इसे लेकर काफ़ी नाराज़गी थी। नतीजतन, जब इंमके के लोगों ने 29 जनवरी 2014 को 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के अरविन्द केजरीवाल के ख़िलाफ़ प्रदर्शन के समानान्तर एक अलग प्रदर्शन का आह्वान किया तो समिति का कोई मज़दूर उसमें शामिल नहीं हुआ और मज़दूरों को बुलाने के लिए गये मुन्ना प्रसाद को वहाँ से खदेड़ दिया, जबकि 'बिगुल मज़दूर दस्ता' द्वारा ठेका प्रथा ख़त्म करने के लिए अरविन्द केजरीवाल के ख़िलाफ़ दिल्ली सचिवालय पर प्रदर्शन करने के लिए दर्जनों मज़दूर वज़ीरपुर से गये थे। इसके बाद से इंमके के लोगों की गरम रोला मज़दूरों के बीच कोई उपस्थिति नहीं थी।

इस वर्ष जब मालिकों ने हर वर्ष 1000 रुपये की बढ़ोत्तरी वायदा पूरा नहीं किया तो मज़दूरों ने 6 जून से अपनी हड़ताल की शुरुआत की। इस हड़ताल की शुरुआत के साथ ही इंमके के लोग फिर से समर्थन करने के नाम पर आये। मज़दूरों ने पहले ही उन्हें कोई तरजीह नहीं दी। शुरुआती दिनों में समर्थन करने वाले संगठनों को हड़ताल का समर्थन करने के लिए मंच पर बोलने का अवसर दिया गया और उसी श्रृंखला में इंमके के लोगों को भी बोलने दिया गया। लेकिन 11 जून आते-आते तमाम चुनावी पार्टियों की यूनियनों और संगठनों और साथ ही स्वयंसेवी संगठनों के लिए मंच के दरवाज़े बन्द कर दिये गये थे। इंमके के लोगों को दो बार श्रम अधिकारियों से मिलने वाले प्रतिनिधि मण्डल में भी शामिल किया गया था। लेकिन बाद में मज़दूरों ने यह निर्णय लिया कि किसी भी प्रतिनिधि मण्डल में इंमके या किसी भी चुनावी पार्टी की यूनियन को शामिल नहीं किया जायेगा। 14 जून के बाद से हर प्रतिनिधि मण्डल में स्वयं मज़दूर सदस्य और नेतृत्वकारी निकाय के सदस्य शामिल होने लगे। साथ ही, इंमके के मुन्ना प्रसाद को स्पष्ट शब्दों में बता दिया गया कि पिछले वर्ष समिति के दफ़्तर से चोरी किये गये काग़ज़ातों को लौटा दे अन्यथा इंमके के लोगों को आन्दोलन से बाहर कर दिया जायेगा। इसके बाद 13 जून को मुन्ना प्रसाद ने कुछ काग़ज़ वापस किये, लेकिन सारे काग़ज़ात वापस नहीं किये। इसके बाद से ही इंमके के लोगों ने आन्दोलन में तोड़-फोड़ की गतिविधियाँ शुरू कर दीं। एक कारख़ाने के कुछ दलाल किस्म के मज़दूरों के साथ मिलकर इंमके के लोगों ने लगातार मज़दूरों के बीच फूट डालने की कोशिश की। 17 जून को मज़दूरों ने इंमके के लोगों को आन्दोलन से बाहर करने का प्रयास किया, लेकिन डी-3 कारख़ाने के एक दलाल मज़दूर रामभुवन ने यह धमकी दी कि वह अपने कारख़ाने के मज़दूरों को आन्दोलन से बाहर कर लेगा। इस पर नेतृत्वकारी निकाय के सदस्यों ने हस्तक्षेप किया और इंमके के लोगों को उस दिन प्रदर्शन-स्थल पर रहने दिया गया। लेकिन इसके बाद पता चला कि 16 जून को इंमके का हरीश और मुन्ना प्रसाद 16 जून को श्रम विभाग द्वारा समिति की शिकायत पर हो रहे निरीक्षण के दौरान एक निरीक्षण टोली में ज़बरन घुसने का प्रयास कर रहे थे और बाद में एक लेबर इंस्पेक्टर की गाड़ी में घूम रहे थे। 17 जून को इंमके के लोगों को स्पष्ट चेतावनी दी गयी थी कि वे किसी भी मज़दूर प्रतिनिधि मण्डल या निरीक्षण टोली में घुसने का प्रयास न करें और उससे दूर रहें। लेकिन 19 जून को श्रम विभाग में समिति की वार्ता के दौरान ही एक लेबर इंस्पेक्टर के पास फ़ोन करके इंमके का हरीश जानकारी लेने का प्रयास करने लगा। उस समय श्रम विभाग में सभी कारख़ानों से दो-दो मज़दूर मौजूद थे। उनके सामने ही यह घटना घटी और लेबर इंस्पेक्टर ने स्वयं बताया कि इंमके के हरीश का फ़ोन आया था। इस पर मज़दूरों ने निर्णय किया कि कल यानी कि 20 जून को इंमके के लोगों को प्रदर्शन-स्थल से भगा दिया जायेगा।

20 जून को जब सुबह सभा की शुरुआत हुई तो उसी समय मज़दूरों ने इंमके के लोगों को वहाँ से चले जाने का कहा। जब इंमके के लोगों ने मज़दूरों की बात नहीं मानी तो मज़दूरों ने उन्हें धक्के मारकर आन्दोलन से बाहर कर दिया। अगले दिन से ही इंमके के लोगों ने इण्टरनेट के ज़रिये आन्दोलन के नेतृत्व के ख़िलाफ़ और साथ ही आन्दोलन में शुरू से सक्रिय 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के साथियों के ख़िलाफ़ निकृष्ट कोटि का प्रचार अभियान शुरू कर दिया। अचानक इंमके के लोगों ने समिति के नेतृत्वकारी सदस्य रघुराज पर एनजीओ का आदमी होने और भाजपा से रिश्ते रखने का आरोप लगाना शुरू कर दिया। उन्होंने आन्दोलन को शर्मनाक समझौते में समाप्त होने वाला आन्दोलन बताना शुरू कर दिया। ग़ौरतलब है कि 20 जून को आन्दोलन से भगाये जाने के पहले इंमके के लोगों ने एक बार भी आन्दोलन या उसके नेतृत्व के लोगों के बारे में कोई सवाल नहीं उठाया था। ये सारे इल्ज़ाम उन्होंने तब लगाने शुरू किये, जब आन्दोलन में उनकी ग़द्दारी और दलाली को मज़दूरों ने रँगे हाथों पकड़ लिया। 27-28 जून को मज़दूरों को एक बड़ी जीत हासिल हुई, जब श्रम विभाग के सामने समझौते में मालिकों को सभी श्रम क़ानूनों को लागू करने की बात माननी पड़ी। इसके बाद मालिकों ने इस समझौते को लागू करने से इंकार किया, तो मज़दूरों ने कारख़ाना गेटों पर क़ब्ज़ा करना शुरू किया और 2 जुलाई से क्रमिक भूख हड़ताल और मज़दूर सत्याग्रह की शुरुआत की। इसके बाद कई कारख़ानों में मालिकों को मजबूर होकर समझौते को लागू करना पड़ा और कुछ कारख़ानों में समझौता लागू न करने पर मज़दूरों ने अपना हिसाब कर लिया और तालाबन्दी करवा दी। अभी भी अन्य कारख़ानों में इस समझौते को लागू करने के लिए मज़दूर अपना संघर्ष जारी रखे हुए हैं। लेकिन इस जारी संघर्ष के दौरान भी इंमके के लोगों ने आन्दोलन के ख़िलाफ़ अपना कुत्साप्रचार जारी रखा है। 27-28 जून के समझौते को पहले इंमके के लोगों ने "शर्मनाक" बताया। लेकिन फिर समिति ने अपने ब्लॉग पर इस समझौते की प्रतिलिपि की स्कैन की हुई प्रतिलिपि अपलोड कर दी। इसके बाद अन्य संगठनों ने ही इंमके के इस प्रचार पर आपत्ति जतायी। 29 जून को इंमके के नगेन्द्र, हरीश, मुन्ना प्रसाद और दीपक एक कारख़ाने डी-3 पर पहुँचे और दो दलाल मज़दूरों रामभुवन और शेरसिंह की मदद से मज़दूरों को इस बात पर राजी करने की कोशिश करने लगे कि वे मालिकों की शर्तें मान लें। इस पर मज़दूर भड़क गये। जब और मज़दूरों तक यह ख़बर पहुँची तो मज़दूरों ने इंमके के इन दलालों को दौड़ा लिया। यह ख़बर मिलने पर स्थिति को सँभालने के लिए 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के नवीन और नितिन मौक़े पर पहुँचे। इंमके के ये लोग भागते हुए पुलिस के पास पहुँचे और उन्होंने जान से मारने का आरोप लगाकर दो मज़दूर साथियों अम्बिका और मनोज तथा 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के नवीन और नितिन को गिरफ़्तार करवा दिया। साथ ही, पुलिस ने इंमके के लोगों को भी गिरफ़्तार किया और फिर दिल्ली के मॉडल टाउन थाने में लेकर गयी। थोड़ी ही देर में समिति की क़ानूनी सलाहकार शिवानी थाने पर पहुँच गयीं और शाम को पुलिस ने दोनों पक्षों का बयान दर्ज करके सभी को रिहा कर दिया। बाद में, यह बात सामने आयी कि इंमके के लोगों ने सोच-समझकर यह पूरा काम किया था, ताकि आन्दोलन के नेतृत्वकारी लोगों पर पुलिस केस हो जाये और आन्दोलन कमज़ोर पड़ जाये। लेकिन उनकी यह चाल कामयाब नहीं हो पायी। इसी बीच इंमके के दीपक ने 'बिगुल मज़दूर दस्ता' की सदस्य और गरम रोला आन्दोलन में नेतृत्वकारी भूमिका निभाने वाली स्त्री कॉमरेड शिवानी के बारे में अपशब्दों का इस्तेमाल करते हुए फ़ेसबुक पर एक पोस्ट डाली। इस पर इंमके के लोगों को चेतावनी दी गयी कि वे यह पोस्ट हटा दें। जब उन्होंने धृष्टता दिखाते हुए यह पोस्ट हटाने से इंकार कर दिया तब 'बिगुल मज़दूर दस्ता' ने इंमके का अधिकारिक तौर पर बहिष्कार करने का निर्णय लिया। साथ ही, मज़दूरों ने एक सभा में इंमके का बहिष्कार करने का निर्णय पास किया। अभी भी इंमके के दलाल आन्दोलन के ख़िलाफ़, समिति के सदस्यों के ख़िलाफ़ और साथ ही 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के ख़िलाफ़ अपने कुत्साप्रचार की मुहिम जारी रखे हुए हैं। लेकिन मज़दूर अपने संघर्ष के ज़रिये हर कदम पर उनके इस कुत्साप्रचार का जवाब दे रहे हैं।

ज्ञात हो कि इंमके के लोगों की मारुति सुजुकी मज़दूर संघर्ष में भी कानाफूसी और जोड़-तोड़ करने की ही राजनीति रही थी। और मारुति सुजुकी मज़दूर आन्दोलन के बिखराव के लिए काफ़ी हद तक इनकी अर्थवादी और सांगठनिक संकीर्णतावादी राजनीति ही ज़िम्मेदार रही थी। इसके बारे में हमने तब भी 'मज़दूर बिगुल' में लिखा था और उनकी कुत्साप्रचार और कानाफूसी की राजनीति को बेनक़ाब किया था। इंमके के पतन की कहानी को अन्त में यहीं पहुँचना था, जहाँ वह पहुँची है। अर्थवादी, ट्रेड यूनियनवादी और अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी राजनीति की यही नियति होती है। आगे हम इस विषय पर भी 'मज़दूर बिगुल' में लिखेंगे कि इंमके के लोग किस प्रकार राजनीतिक चौर्यलेखन का सहारा लेते रहे हैं। जब 'बिगुल' के रूप में एक राजनीतिक मज़दूर अख़बार की शुरुआत की गयी थी, तो इंमके के लोगों ने इस पूरी

(पेज 12 पर जारी)

गाज़ा में इज़रायल द्वारा जारी इस सदी के बर्बरतम जनसंहार के विरुद्ध देशभर में विरोध प्रदर्शन

इस सदी के बर्बरतम नरसंहार, यानी गाज़ा के नागरिकों पर जारी इज़रायल के हवाई हमलों के विरुद्ध दुनियाभर में विरोध-प्रदर्शन हो रहे हैं। भारत में बिगुल मज़दूर दस्ता से जुड़े साथियों ने इसपर पहल लेने में अहम भूमिका निभायी और देश के कई शहरों में विरोध-प्रदर्शन आयोजित करने में आगे रहे।

दिल्ली में 13 जुलाई को इज़रायली दूतावास के सामने विरोध-प्रदर्शन करके इज़रायली राजदूत और भारत सरकार के नाम ज्ञापन सौंपा और गाज़ा पर इज़रायली हमले को तुरन्त बन्द करने की माँग की गयी। आम इंसाफ़पसन्द नागरिकों की ओर से 'गाज़ा के पक्ष में एकजुट भारतीय जन' के बैनर तले आयोजित इस प्रदर्शन में दिल्ली और आसपास के सैकड़ों छात्रों-युवाओं-बुद्धिजीवियों-कलाकारों और आम नागरिकों ने ज़ियनवादी-साम्राज्यवादी हमले के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द की।

प्रदर्शन के बाद इज़रायली राजदूत के नाम ज्ञापन भेजा गया जिसमें इज़रायल से तुरन्त बमबारी बन्द करने और फिलिस्तीन की घेरेबन्दी ख़त्म करके फिलिस्तीन को मान्यता देने की माँग की गयी है। भारत सरकार को दिये गये ज्ञापन में माँग की गयी कि भारत सरकार इज़रायल के राजदूत को बुलाकर बमबारी तुरन्त बन्द करने की माँग करे, राजदूत को बुलाकर सख़्त चेतावनी दे कि गाज़ा पर बमबारी बन्द नहीं होगी तो भारत सरकार इज़रायल से समस्त राजनयिक सम्बन्ध समाप्त कर देगी, भारत सरकार संयुक्त राष्ट्रसंघ की आपात बैठक बुलाने की माँग करे।

मुम्बई में पुलिस की सख़्ती के बावजूद सैकड़ों छात्रों-युवाओं, बुद्धिजीवियों और नागरिकों ने इज़रायल के वाणिज्य दूतावास पर प्रदर्शन करके गाज़ा में जारी बर्बर जनसंहार पर आक्रोश जताया। इसमें शामिल होने वाले मुख्य संगठन थे – भारत-फिलिस्तीन एकजुटता फ़ोरम, बिगुल मज़दूर दस्ता, यूनिवर्सिटी कम्युनिटी फ़ॉर डेमोक्रेसी एण्ड इक्वैलिटी, नौजवान भारत सभा, रिपब्लिकन पैन्थर, दलित अत्याचार विरोधी कृति समिति, भारत बचाओ आन्दोलन, विद्यार्थी भारती, फ़ेडरेशन ऑफ़ माइनॉरिटीज़ ऑफ़ महाराष्ट्र, मुस्लिम इण्टेलेक्चुअल फ़ोरम, फुले-अम्बेडकर विचार मंच, इंस्टीट्यूट फ़ॉर पीस स्टडीज़ एण्ड कॉन्फ़्लिक्ट रिज़ोल्यूशन।

लखनऊ में गाज़ा के आम नागरिकों पर इज़रायल के हमलों को बेगुनाहों का क़त्लेआम करार देते हुए नागरिकों, बुद्धिजीवियों, कलाकारों, छात्रों-युवाओं, महिलाओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने विरोध मार्च निकाला और गाज़ा पर हमले को तुरन्त बन्द करने की माँग की। सरोजिनी नायडू पार्क से शुरू हुआ मार्च हजरतगंज से होते हुए और रास्ते में पर्चे बाँटते हुए जीपीओ पहुँचा। 'गाज़ा के पक्ष में एकजुट भारतीय जन' के बैनर तले आयोजित इस प्रदर्शन में वक्ताओं ने कहा कि दुनियाभर में जारी विरोध के बावजूद इज़रायली हुकूमत गाज़ा में आम नागरिकों पर हमले कर रही है और दुनिया की सरकारें चुपचाप इस जनसंहार को देख रही हैं। पाँच दिनों में 152 लोग मारे गये हैं और 1000 से अधिक बुरी तरह घायल और विकलांग हो गये हैं। इनमें करीब आधे बच्चे, महिलाएँ और बुजुर्ग हैं। इस सदी के इस बर्बरतम जनसंहार पर भारत सरकार और तमाम पार्टियों की चुप्पी निन्दनीय है। पश्चिम एशिया में अमेरिकी शह पर इज़रायली गुण्डागर्दी पर रोक नहीं लगायी गयी तो वहाँ कभी शान्ति क़ायम नहीं हो सकती। प्रदर्शन में भारत सरकार को सम्बोधित ज्ञापन पारित किया गया, जिसे कल ज़िला प्रशासन के माध्यम से भेजा जायेगा। ज्ञापन में माँग की गयी है कि भारत सरकार इज़रायल के हमले की निन्दा करे और गाज़ा में बेगुनाहों का क़त्लेआम रोकने की माँग करे। यदि इज़रायल ऐसा नहीं करता है तो भारत सरकार को इज़रायल के साथ अपने राजनयिक सम्बन्ध समाप्त कर लेने चाहिए।

इलाहाबाद में शहीद भगतसिंह विचार मंच की ओर से शहर में विरोध मार्च निकाला गया और कई स्थानों पर सभाएँ की गयीं तथा पर्चे बाँटे गये। सभाओं में वक्ताओं ने कहा कि इज़रायल "आत्मरक्षा" के बेशर्म तर्क को दोहराते हुए दुधमुँहे बच्चों, बूढ़ी औरतों और अस्पतालों में भर्ती मरीजों तक की जान ले रहा है लेकिन इज़रायल का यह सरकारी आतंकवाद संयुक्त राष्ट्रसंघ को नज़र नहीं आ रहा। पटना में नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ताओं ने शहर के विभिन्न इलाक़ों में नारे लगाते हुए मार्च निकाला और नुक्कड़ सभाएँ करके पर्चे बाँटे।

देश के कई अन्य शहरों में विरोध प्रदर्शनों का सिलसिला जारी है।

– बिगुल संवाददाता

वज़ीरपुर गरम रोला मज़दूर आन्दोलन में 'इंक़लाबी मज़दूर केन्द्र' के घृणित ग़द्दारी और गरम रोला मज़दूरों का माकूल जवाब

(पेज 11 से आगे)

अवधारणा पर सवाल उठाकर बहस चलायी थी, जिसे हमने 'बिगुल' में प्रकाशित भी किया था। लेकिन बाद में उन्होंने 'बिगुल' की ही तर्ज पर स्वयं एक मज़दूर अख़बार निकालना शुरू किया। इस पर प्रश्न उठाया गया तो उन्होंने अपनी आत्मालोचना रखी। इसके बाद 'बिगुल' की ओर से हमने आन्दोलन के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि आज के दौर में जब एक भूमण्डलीय असेम्बली लाइन बनायी जा रही है, बड़े कारख़ानों को कई छोटे-छोटे कारख़ानों में तोड़ा जा रहा है, बड़े कारख़ानों के भीतर भी लगातार ठेकाकरण और दिहाड़ीकरण के ज़रिये अनौपचारिकीकरण किया जा रहा है, तब हमें कारख़ाना यूनियनों को बनाने के साथ ही सेक्टोरल (पेशागत) यूनियनें और इलाक़ाई यूनियनें भी बनानी होंगी। इस पर इंमके के लोगों ने पहले आपत्ति की और कहा कि 'बिगुल' मज़दूर संघर्ष को उत्पादन के क्षेत्र (कारख़ाने) से उपभोग के क्षेत्र (रिहायशी बस्तियों) में ले जाने की बात कर रहा है। इस पर इंमके के लोगों को यह बताया गया कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद की बुनियादी शिक्षा ही यही है कि मज़दूर की श्रमशक्ति स्वयं एक माल बन जाती है। ऐसे में, कारख़ाने के उत्पादन के साथ इस श्रमशक्ति के उत्पादन के क्षेत्र, यानी कि मज़दूर बस्तियों में भी मज़दूरों को संगठित करना होगा; पिछले दो-तीन दशकों का तजुर्बा भी यह बता रहा है कि सिर्फ़ कारख़ानों की चौहद्दियों में क़ैद रहकर मज़दूर आन्दोलन आज आगे नहीं बढ़ सकता है। इसके करीब 3 वर्ष बाद कोलकाता की एक संगोष्ठी में इंमके द्वारा प्रस्तुत पेपर में 'बिगुल' की इस पूरी लाइन को बिना सन्दर्भ बताये और शब्द बदलकर उठा लिया गया। इसके अलावा इंमके की पूरी अवधारणा ही मार्क्सवाद-लेनिनवाद के मुताबिक ग़लत है। ये अपने आपको मज़दूर वर्ग का "जनराजनीतिक केन्द्र" बताते रहे हैं। इस पर हमारा शुरू से यह प्रश्न था कि ऐसे ही जनराजनीतिक केन्द्र के तौर पर रूस के कम्युनिस्ट आन्दोलन में एक्सेलरोद ने एक मज़दूर कांग्रेस का प्रस्ताव रखा था। इस पर लेनिन ने कड़ी आपत्ति दर्ज करायी थी और कहा था कि मज़दूरों का एक ही राजनीतिक केन्द्र होता है और वह है पार्टी। इसके अलावा, कोई भी राजनीतिक केन्द्र बनाने का प्रयास पार्टी की सौत को जन्म देगा और विसर्जनवादी धारा को आगे बढ़ायेगा। दरअसल इंमके के लोगों की यह ग़ैर-मार्क्सवादी सोच भी इनकी अपनी नहीं है, बल्कि इन्होंने इसे पश्चिम बंगाल के एक संगठन से चोरी किया है जो कि पार्टी से इतर मज़दूर वर्ग के एक राजनीतिक केन्द्र की बात करते हैं। इंमके की राजनीतिक नैतिकता का अन्दाज़ा इन्हीं बातों से चलता है। इनकी पूरी राजनीति ही अब तक विजातीय रुझानों से टुकड़ों-टुकड़ों में लाइन चोरी करके चलती रही है। तमाम प्रश्नों पर इंमके लगातार अपनी अवस्थिति इसी प्रकार बदलता रहा है, विचारों को बिना सन्दर्भ बताये चोरी करता रहा है और मौलिक तौर पर अगर इसने कुछ किया है तो वह अर्थवाद, ट्रेडयूनियनवाद, संघाधिपत्यवाद, अवसरवाद और कुत्साप्रचार की राजनीति है। हम आगे इनके इस चौर्य-लेखन पर विस्तार से एक लेख प्रकाशित करेंगे। लेकिन अभी इतना कहना पर्याप्त है कि ऐसे संगठन की यही नियति थी कि अन्त में वह ग़द्दारी और दलाली के दलदल में जाकर गिरे। वज़ीरपुर के गरम रोला आन्दोलन में इंमके की कुत्सित और निकृष्ट दलाली और ग़द्दारी के चलते ही यह स्थिति है कि मज़दूर इन्हें देखते ही खदेड़ रहे हैं। इस आन्दोलन की यह एक बड़ी उपलब्धि थी कि इसने मज़दूर वर्ग के इन भितरघातियों को बेनक़ाब किया और अपनी क़तारों से बाहर खदेड़ दिया।

क्रान्तिकारी चीन में स्वास्थ्य प्रणाली

यह लेख चीन में हुए स्वास्थ्य सेवाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन की एक झलक है।
हम आगे भी "मज़दूर बिगुल" अख़बार में स्वास्थ्य के क्षेत्र में जनता द्वारा किये गये महान प्रयोगों की रिपोर्ट प्रकाशित करते रहेंगे।

हर देश में स्वास्थ्य का अधिकार जनता का सबसे बुनियादी अधिकार होता है। यूँ तो देश का संविधान का अनुच्छेद 21 कहता है कि "कोई भी व्यक्ति अपने जीवन से वंचित नहीं किया जा सकता"। लेकिन हम सभी जानते हैं कि भारत में स्वास्थ्य सेवाओं के अभाव में रोज़ाना हज़ारों लोग अपनी जान गँवा देते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की 2011 की रिपोर्ट के अनुसार 70 फ़ीसदी भारतीय अपनी आय का 70 फ़ीसदी हिस्सा दवाओं पर ख़र्च करते हैं। मुनाफ़ा-केन्द्रित व्यवस्था ने हर मानवीय सेवा को बाज़ार के हवाले कर दिया है, जानबूझकर जर्जर और खस्ताहाल की गयी स्वास्थ्य सेवा को बेहतर करने के नाम पर सभी पूँजीवादी चुनावी पार्टियाँ निजीकरण व बाज़ारीकरण पर एक राय हैं। ऐसे में सवाल उठता है कि दुनिया की महाशक्ति होने का दम्भ भरने वाली भारत सरकार अपनी जनता को सस्ती और सुलभ स्वास्थ्य सेवा भी उपलब्ध नहीं कर सकता है। ऐसे में हम अपने पड़ोसी मुल्क चीन के क्रान्तिकारी दौर (1949-76) की चर्चा करेंगे, जहाँ मेहनतकश जनता के बूते बेहद पिछड़े और बेहद कम संसाधनों वाले "एशिया के बीमार देश" ने स्वास्थ्य सेवा में चमत्कारी परिवर्तन किया, साथ ही स्वास्थ्य कर्मियों और जनता के आपसी सम्बन्ध को भी उन्नततर स्तर पर ले जाने का प्रयास किया।

डॉक्टर ऋषि

1949 में क्रान्ति के बाद से ही चीन में स्वास्थ्य सेवाओं में लगातार प्रगति हुई। महान सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान अन्य और क्षेत्रों की तरह ही स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी अद्वितीय प्रयोग किये गये। एक नये प्रकार की स्वास्थ्य सेवा विकसित की गयी और इसकी पहुँच शहरों से लेकर दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों तक विस्तारित की गयी। सामूहिकता और कम्युनिस्ट पार्टी का इसमें बहुत महत्वपूर्ण योगदान था। चीनी चिकित्सा पद्धति और आधुनिक चिकित्सा पद्धति के समन्वय के लिए और साथ ही साथ चिकित्सा शिक्षा की समाजवादी प्रणाली विकसित करने के लिए उल्लेखनीय प्रयोग किये गये। नौकरशाही का रोल और दूसरे क्षेत्रों की तरह ही स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी काफ़ी हद तक काम किया गया।

क्रान्ति-पूर्व चीन में स्वास्थ्य की स्थिति

चीन को 20वीं सदी के पूर्वार्ध में 'एशिया का बीमार आदमी' की उपाधि मिली हुई थी। देश लगभग हर प्रकार की संक्रामक और कुपोषण-जनित बीमारियों से ग्रसित था। बैक्टीरिया से होने वाली बीमारियों में हैजा, कुष्ठ रोग, प्लेग, दिमाग़ी बुखार, टी.बी., टायफ़ाइड इत्यादि प्रमुख थे। वायरस से होने वाली बीमारियाँ चेचक, जापानी बुखार और ट्रेकोमा थी। परजीवियों से होने वाली बीमारियाँ काला-बुखार, मलेरिया, हुक-वर्म और शिस्तोसोमिअसिस इत्यादि थी। यौन रोग बड़े पैमाने पर फैले थे। कुपोषण से सम्बन्धित बीमारियों में लगभग हर प्रकार की बीमारियाँ जैसेकि क्वाशिओर्कर (kwashiorkor) और सूखा रोग (marasmus) व विटामिन की कमी से होने वाली बीमारियाँ जैसेकि बेरी-बेरी, पैलेग्रा, स्कर्वी और रिकेट्स बड़े पैमाने पर व्याप्त थीं. "कुपोषण" एक तरह से भुखमरी का ही दूसरा नाम था। शिशु मृत्यु दर (प्रति 1000 जन्म) लगभग 200 थी। यानी हर पाँच में से एक बच्चा अपने जन्म के प्रथम वर्ष में मरने को अभिशप्त था। बीमारियों के होने का एक मुख्य कारण व्यापक पैमाने पर मौजूद भयंकर ग़रीबी थी और ग़रीबी का एक मुख्य कारण मज़दूरों और किसानों के श्रम की औपनिवेशिक ताक़तों व व्यापारियों के द्वारा जारी नंगी लूट थी। ग़रीबी की इन परिस्थितियों में स्वास्थ्य सेवाएँ (अगर संसाधन पर्याप्त मात्रा में होते भी) थोडा-बहुत फ़र्क़ ही डाल सकती थी। लेकिन स्वास्थ्यकर्मियों और संसाधनों की भयंकर कमी और अनुपलब्धता इस समस्या को और भी जटिल बना देती थी।

क्रान्ति-पूर्व चीन में स्वास्थ्यकर्मियों व संसाधनों की स्थिति

चीन में मुख्यत: दो तरह के स्वास्थ्यकर्मी होते थे। एक वे जो पारम्परिक चीनी पद्धति का अनुसरण करते थे और दूसरे वे जो आधुनिक चिकित्सा पद्धति का। पारम्परिक डॉक्टरों का इतिहास 2000 साल से भी अधिक पुराना है, जबकि आधुनिक डॉक्टर पहले यूरोपीयन देशों से पढ़कर आते थे और बाद में चीन के मेडिकल कॉलेजों से ही आने लगे। चीन में वर्ष 1949 में, एक अनुमान के मुताबिक़, पारम्परिक चीनी पद्धति के डॉक्टरों की संख्या पाँच लाख से ज़्यादा नहीं थी। इसी तरह आधुनिक पद्धति के डॉक्टरों और जनसंख्या का अनुपात 1:50,000 से 1:13000 के बीच में था। ग़ौरतलब बात यह है कि उस समय अमेरिका में यह अनुपात 1:750 था। चीन को उस अनुपात तक पहुँचने के लिए करीब सात लाख डॉक्टरों की ज़रूरत पड़ती। हालाँकि 1949 से पहले भी आधुनिक डॉक्टरों की संख्या बढ़ाने की कोशिशें हुई थीं, लेकिन डॉक्टरों को प्रशिक्षण के ज़्यादातर प्रयास अमेरिकी या यूरोपियन मॉडल को आधार बनाकर किये गये। इसी तरह अस्पतालों की संख्या बहुत कम और हालात खस्ता थे। एक अनुमान के मुताबिक़, चीन के अस्पतालों में 1949 में लगभग कुल 90,000 बैड थे। चीन को अमेरिका के उस समय के स्तर पर पहुँचने के लिए लगभग 50 लाख बैड चाहिए थे। उस पर भी ज़्यादातर आधुनिक डॉक्टर और स्वास्थ्य सुविधाओं का शहरों में ही केन्द्रित रहना समस्या को और भी जटिल बना देता था।

संक्षेप में कहें तो चीन के ग्रामीण इलाक़ों की भारी आबादी और शहरी ग़रीबों की बहुसंख्या को मिलने वाली स्वास्थ्य सेवाएँ सिर्फ़ वे थीं, जोकि पारम्परिक डॉक्टरों (जिनमें से काफ़ी पूरी तरह पारंगत भी नहीं थे) द्वारा दी जाती थी। रोग निरोधक चिकित्सा का कोई नामो-निशान नहीं था और ज़्यादातर लोग ग़रीबी, बीमारी और अपंगता के अनन्त और अवश्यम्भावी कुचक्र में फँसे रहने को अभिशप्त थे।

'नव जनवादी क्रान्ति' के बाद और 'सांस्कृतिक क्रान्ति' के पहले स्वास्थ्य की स्थिति

इन सब हालातों को देखते हुए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि माओ ने 1930 के दशक से ही स्वास्थ्य सेवाओं को चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और जनमुक्ति सेना की प्राथमिकता-सूची में काफ़ी ऊपर रखा हुआ था। प्रत्येक गाँव के कोमिनतांग या जापान के चंगुल से 'मुक्त' होते ही शुरुआती काम भूमि-सुधार, किसानों को संगठित करना और स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करना होता था। 1949 में कम्युनिस्ट पार्टी के सत्ता सँभालने के बाद भी स्वास्थ्य सेवाओं की प्राथमिकता पहले की तरह ही बनी रही। 1950 के दशक के शुरुआती वर्षों में पीकिंग में आयोजित 'नेशनल हेल्थ कांग्रेस' में अपनाये गये उसूलों और माओ के दिशा-निर्देशों के संयोजन से एक वैचारिक समुच्चय निर्मित हुआ जो स्वास्थ्य सेवाओं के विकास का विचारधारात्मक आधार बना। यह वैचारिक समुच्चय था -

1. चिकित्सा विज्ञान को श्रमिकों (मज़दूरों, किसानों और सिपाहियों) की सेवा के लिए होना चाहिए।
2. रोग निरोधक चिकित्सा को रोग निवारक चिकित्सा के मुकाबले प्राथमिकता मिलनी चाहिए।
3. पारम्परिक डॉक्टरों और आधुनिक डॉक्टरों को एक-दूसरे के साथ "संगठित" किया जाना चाहिए।
4. स्वास्थ्य से सम्बन्धित कामों को जन-आन्दोलनों से जोड़ा जाना चाहिए।

इसके बाद के 15 सालों में - 1950 से 1965 तक - चीन के 60 करोड़ लोगों के स्वास्थ्य और राज्य की स्वास्थ्य सेवाओं में बहुत बड़े बदलाव लाये गये, जोकि अपनी गति और पहुँच में इतिहास में शायद अद्वितीय थे। हैजा, प्लेग, चेचक और पोषण से सम्बन्धित ज़्यादातर बीमारियाँ लगभग ख़त्म हो गयी; अफीम की लत का सामुदायिक सहयोग से निर्मूलन किया गया; यौन रोगों में थोडा ज़्यादा समय लगा, लेकिन वे भी सामाजिक और चिकित्सकीय तकनीकों के संयोजन से 1960 के दशक के शुरुआती वर्षों तक ख़त्म कर दिये गये।

" महान देशभक्त स्वास्थ्य आन्दोलन" के द्वारा लोगों को चार कीटों चमेजे (मक्खियाँ, मच्छर, चूहें और चिड़ियाँ - बाद में चिड़ियों की जगह खटमल को शामिल किया गया) के ख़िलाफ़ गोलबन्द किया गया। कह सकते हैं कि "लोगों की पुरानी आदतें और रीति-रिवाज बदल दिये गये", "समाज का नव-निर्माण किया गया" और "'स्वच्छता को सम्मान मानने' का नज़रिया लोगों के भीतर अपनी जगह बनाने लगा"।

स्वास्थ्यकर्मियों को बड़ी तेज़ी से प्रशिक्षित किया जाने लगा। ओर्लीन्स के मुताबिक़ 1966 के अन्त तक चीन में लगभग डेढ़ लाख आधुनिक डॉक्टर थे - यह 20 सालों में एक लाख डॉक्टरों की बढ़ोतरी थी! अगर 1966 में चीन की जनसंख्या 72.5 करोड़ मानी जाये तो डॉक्टर और जनसंख्या का अनुपात 1:5000 आता है, जोकि पश्चिमी देशों (अमेरिका का 1:750) के मुकाबले अपर्याप्त है। इसके अलावा ये डॉक्टर अभी भी मुख्यत: शहरों में ही केन्द्रित थे, यद्यपि नये डॉक्टरों को ग्रामीण इलाक़ों में भेजने की कोशिशें की जा रही थीं। स्वास्थ्य मन्त्रालय की 1965 की एक रिपोर्ट के अनुसार 1963 के बैच के 25,000 डॉक्टरों में से ज़्यादातर को काउण्टी अस्पतालों और खनन कम्पनियों में भेजा जा चुका था।

स्वास्थ्यकर्मियों की बढ़ती संख्या का एक स्रोत सेकण्डरी मेडिकल स्कूलों का विकास था, हालाँकि इनका विकास भी सोवियत मॉडल पर ही आधारित था। एक अनुमान के अनुसार 1957 में ऐसे स्कूल 170, 1964 में 200 और 1965 में 230 की संख्या में थे। इन स्कूलों में बड़ी संख्या में सहायक डॉक्टर, नर्सें, मिड-वाईफ़, फ़ार्मासिस्ट, रेडिओलॉजी और प्रयोगशाला टेक्नीशियन प्रशिक्षित किये गये। ओर्लीन्स के अनुसार, 1966 में चीन में लगभग 1,72,000 असिस्टेण्ट डॉक्टर, 1,86,000 नर्सें, 42,000 मिड-वाईफ़ें और 1,00,000 फ़ार्मासिस्ट थे।

'नव जनवादी क्रान्ति से लेकर 'सांस्कृतिक क्रान्ति' के बीच के समय में पारम्परिक चीनी डॉक्टरों और आधुनिक डॉक्टरों को एकीकृत करने के बहुत प्रयास किये गये, लेकिन वे बहुत ज़्यादा फलदायक साबित नहीं हुए। 1966 में 21 पारम्परिक चीनी मेडिकल कॉलेजों में 10,000 छात्र थे। लेकिन कुल मिलाकर पारम्परिक डॉक्टरों की संख्या में पहले के मुकाबले कोई

(पेज 14 पर जारी)

क्रान्तिकारी चीन में स्वास्थ्य प्रणाली

(पेज 13 से आगे)

ख़ास परिवर्तन नहीं हुआ। 1965 में उनकी कुल संख्या 5,00,000 थी, जोकि 1949 के बराबर ही थी।

तालिका 1 में 1966 में सांस्कृतिक क्रान्ति के शुरू होने के समय चीन के स्वास्थ्यकर्मियों की संख्या और अनुपातों का विवरण है। ये संख्या और अनुपात पश्चिमी देशों के मुकाबले अभी भी कम थे, लेकिन अगर इनकी तुलना 15 साल पुराने आँकड़ों से की जाये तो इतने कम समय में इतनी वृद्धि को आश्चर्यजनक ही कहा जायेगा।

तालिका 1

कर्मचारी का प्रकार	संख्या	जनसंख्या : स्वास्थ्यकर्मी	स्वास्थ्यकर्मी : 1,00,000 जनसंख्या
पश्चिमी चिकित्सा			
स्कूल के स्नातक			
उच्चतर मेडिकल स्कूल			
1. चिकित्सक	1,50,000	4,800	21
2. दंत चिकित्सक	30,000	24,000	4
3. औषध विज्ञानी	20,000	36,000	3
सेकण्डरी मेडिकल स्कूल			
1. सहायक चिकित्सक	1,70,000	4,300	23
2. नर्सें	1,85,000	3,900	26
3. दाइयाँ	40,000	18,000	6
4. फ़ार्मासिस्ट	1,00,000	7,300	14
पारम्परिक चीनी चिकित्सा पद्धति के अभ्यासकर्मी	5,00,000	1,500	69

लगभग इतनी ही तेज़ गति से स्वास्थ्य सुविधाओं में बढ़ोतरी हुई। एफ़. एवरी जोन्स के मुताबिक़ 1949 और 1957 के बीच में 860 नये अस्पताल बनाये गये, जिनमें प्रति अस्पताल औसतन 350 बैड थे। इसका मतलब यह हुआ कि चीन में इन आठ सालों में हर 3.5 दिन में एक नया अस्पताल बना और कुल लगभग तीन लाख बैड उपलब्ध हुए। 1971 में कनाडा के दौरे पर गये चीनी डॉक्टरों के एक दल ने बताया कि 1949 से 1965 के बीच अस्पतालों में बैडों की संख्या आठ गुना बढ़ गयी। इसका मतलब यह हुआ कि 1957 से 1965 के बीच बेडों की संख्या में लगभग चार लाख की अतिरिक्त वृद्धि हुई। जून 1965 में स्वास्थ्य मन्त्रालय के एक अधिकारी ने बड़े गर्व से बताया कि चीन की हर एक काउण्टी (ज़िले) में एक अस्पताल है।

हालाँकि टेक्नोलोजी पश्चिमी देशों के मुकाबले काफ़ी पीछे थी, लेकिन यह तेज़ गति से प्रगति कर रही थी। दवा उद्योगों ने अपने सोवियत साथियों को भी पीछे छोड़ दिया था। कटे हुए अंगों के प्रत्यारोपण और बुरी तरह जले मरीजों का इलाज करने जैसे विषम और विशेषज्ञता के क्षेत्रों में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। यहाँ पर भी स्वास्थ्यकर्मियों के टीम-वर्क और मरीजों को अपनी बीमारी से लड़ने के लिए प्रोत्साहित करने के महत्त्व पर ज़ोर दिया गया। मौलिक अनुसन्धान सीमित थी, लेकिन सफलतापूर्वक तरीक़ों से इस्तेमाल की जा रही थी। 1965 में इन्सुलिन का कृत्रिम तरीक़े से उत्पादन इसका एक उदहारण है। काफ़ी हद तक क्लीनिकल रिसर्च भी जारी थी। कुल मिलाकर 1965 के अन्त तक ऐसा प्रतीत हो रहा था कि एक समाजोन्मुख, निवारणोन्मुख और ठीक-ठाक स्वास्थ्य सेवा प्रणाली विकसित हो गयी है, जिसे हालाँकि चीन की सम्यक ज़रूरतें पूरी करने के लिए एक लम्बा रास्ता तय करना है, लेकिन जिसने सेवाओं की गुणवत्ता और उनके वितरण और आम जनता के स्वास्थ्य में उल्लेखनीय इज़ाफ़ा किया है।

सांस्कृतिक क्रान्ति का प्रभाव

संक्षेप में, बाहरी प्रेक्षकों - और शायद उस समय के कई चीनी नेताओं को भी - यह लगा कि स्वास्थ्य मन्त्रालय ने अपनी ज़िम्मेदारी का काफ़ी अच्छी तरह से निर्वहन किया है, ख़ासकर अगर यह ध्यान में रखा जाये कि उसकी शुरुआत किस बिन्दु से हुई थी और उसके पास काम के हिसाब से संसाधनों की भारी कमी थी। लेकिन 1965 में माओ और उनकी 'जनदिशा' को मानने वाले अन्य लोगों के अनुसार मन्त्रालय कई मुख्य क्षेत्रों में अपने उद्देश्य प्राप्त करने में विफल रहा था।

1. ग्रामीण इलाक़ों में अतिरिक्त संसाधनों को प्रदान करने के महत्त्व को पहचानने के बावजूद शहरी क्षेत्रों ने सीमित संसाधनों का विषमतापूर्वक ज़्यादा बड़ा हिस्सा प्राप्त किया।

2. रोग निरोधक चिकित्सा का महत्व पहचानने और कई प्रोग्रामों के सफल होने के बावजूद शोध, शिक्षण और स्वास्थ्य सेवाओं में रोग निरोधक चिकित्सा के बजाय रोगनिवारक चिकित्सा पर ज़्यादा ध्यान दिया गया।

3. पारम्परिक चीनी पद्धति और आधुनिक पद्धति के एकीकरण के महत्त्व को पहचानने के बावजूद और इसमें कुछ हद तक सफलता मिलने के बावजूद पारम्परिक पद्धति पर कम ध्यान दिया गया और इसका स्तर आधुनिक पद्धति से नीचे माना गया।

4. अन्य देशों से लायी गयी तकनीक में चीन की विशेष परिस्थितियों के अनुसार बदलाव लाने, न कि उसे निर्विरोध स्वीकार (uncritically adopt) करने के महत्त्व को पहचानने के बावजूद चिकित्सा शिक्षा, जन-स्वास्थ्य और स्वास्थ्य सेवाओं के प्रशासन के मॉडलों में सीधे सोवियत यूनियन की नकल की गयी।

5. सामूहिक नेतृत्व और नीतियाँ लागू करने में 'दिशा निर्देश' वाली पद्धति के बजाय शिक्षा और प्रोत्साहन के महत्त्व को पहचानने के बावजूद एक पदसोपानिक प्रबन्धन संरचना विकसित हो गयी है, जिसका शीर्ष स्तर नीचे से दिये गये सुझावों और आलोचनाओं के प्रति सापेक्षिक रूप से उत्तरदायी हो गया है।

6. संसाधन सीमित होने के बावजूद समाज में प्रत्येक व्यक्ति की

उन तक पहुँच है - इस बात का त्वरित आश्वासन देने के महत्त्व को पहचानने के बावजूद जो कुछ उपलब्ध था, उसे लोकप्रिय बनाने के बजाय 'मानक ऊपर करने' पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया।

7. आख़िर में और शायद माओ और उनके साथियों की नज़रों में सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण बात कि मैनेजरों को आम जनता के सम्पर्क में रहने - और मानसिक श्रम को शारीरिक श्रम से ज़्यादा महत्त्व देने की परम्परा को तोड़ने - के महत्त्व को जानने के बावजूद इन मुख्य माओवादी उसूलों का पालन करने की बजाय उन्हें तोड़ा ज़्यादा गया।

माओ ने 26 जून 1965 में स्वास्थ्य मन्त्रालय की आलोचना करते हुए एक वक्तव्य दिया। माओ ने टिप्पणी की कि "स्वास्थ्य मन्त्रालय देश की सिर्फ़ 15 प्रतिशत आबादी को सेवाएँ प्रदान करता है" और "इस मन्त्रालय का नाम बदलकर 'शहरी स्वास्थ्य मन्त्रालय' रख देना चाहिए" काफ़ी लोकप्रिय हुए। इस वक्तव्य का आख़िरी वाक्य - "चिकित्सा और स्वास्थ्य के काम में ग्रामीण इलाक़ों पर ज़्यादा ज़ोर दो" - बड़े पैमाने पर प्रकाशित हुआ और 'जून 26 निर्देश' के नाम से जाना गया। अपने इस वक्तव्य में माओ ने कई नुस्खे दिये -

- *मेडिकल शिक्षा पर :* प्राइमरी शिक्षा के बाद मेडिकल स्कूल में तीन साल काफ़ी है। मेडिकल स्कूल के बाद छात्रों को लगातार प्रैक्टिस के माध्यम से अपनी दक्षता में सुधार लाना चाहिए।

- *मेडिकल रिसर्च पर :* चोटी की समस्याओं - बहुत जटिल और लगभग असाध्य रोगों - पर कम और जनता के किये सबसे ज़्यादा ज़रूरी - आम बीमारियों से बचाव और उनके इलाज - पर ज़्यादा व्यक्तियों और संसाधनों को लगाना चाहिए।

- *मेडिकल सेवाओं पर :* सभी डॉक्टरों, सिवाय उनके जो बहुत दक्ष नहीं हैं, को प्रैक्टिस के लिए गाँवों में जाना चाहिए।

1965 में सांस्कृतिक क्रान्ति शुरू होने के बाद माओ द्वारा तय की गयी लाइन को लागू करने के लिए हरसम्भव प्रयास किये गये। स्वास्थ्य मन्त्रालय और चीनी मेडिकल एसोसिएशन को "संघर्ष, आलोचना और बदलाव" का संघर्ष-केन्द्र बनाया गया। इस दौरान मेडिकल स्कूलों में कोई नयी कक्षा शुरू नहीं की गयी और पहले से पढ़ रहे मेडिकल छात्रों को व्यावहारिक प्रशिक्षण देकर गाँवों में भेज दिया गया। मेडिकल स्कूलों के फैकल्टी सदस्यों, शोधकर्ताओं और अन्य दूसरे शहरी स्वास्थ्यकर्मियों को भी एक निश्चित समय के लिए ग्रामीण इलाक़ों में भेजा जाता था, जहाँ वे मेडिकल कार्य जैसेकि 'बेयरफुट डॉक्टरों' की ट्रेनिंग, मेडिकल और प्रतिरोधक सेवाएँ और किसानों को स्वयं के स्वास्थ्य में बड़ा रोल निभाने के लिए उन्हें आन्दोलित करने के साथ-साथ शारीरिक श्रम भी करते थे। शहरी स्वास्थ्यकर्मियों को या तो निश्चित स्थानों - जैसे काउण्टी अस्पताल और कम्यून अस्पताल या फिर "सचल मेडिकल टीमों" में तैनात किया गया। किसी भी समय हर शहरी अस्पताल का कम से कम एक तिहाई स्टाफ़ गाँवों में होता था। वे छः से लेकर एक साल तक का समय वहाँ बिताते थे और अपने परिवारजनों से मिलने साल में दो बार जा सकते थे। अगर वे और भी ज़्यादा समय वहाँ बिताना चाहते थे तो अपने परिवार को भी साथ रख सकते थे; कहा जाता है कि कुछ शहरी डॉक्टर तो स्थायी रूप से गाँवों में बस भी गये थे।

गाँवों में भेजने का एक और कारण जो दिया गया, वह था कि शहरी डॉक्टर, मेडिकल स्कूलों के टीचर और शोधकर्ता कठिन परिश्रम और किसानों के सम्पर्क के माध्यम से "पुनर्शिक्षित" किये जायें। जो लोग गाँवों में रहे थे, वे बताते थे कि कैसे उन्हें किसानों की कठिन ज़िन्दगी का अन्दाज़ा नहीं था और कैसे किसानों की ज़रूरतों को समझने की वजह से अब उनमें मेडिकल सेवा के प्रति प्रतिबद्धता और बढ़ गयी है। हालाँकि 1965 से पहले भी "सहायकों" के विकास के प्रयास हुए थे, लेकिन 'सांस्कृतिक क्रान्ति' के दौरान एक नये तरह के स्वास्थ्यकर्मियों का निर्माण हुआ, जोकि "रेगुलर" डॉक्टरों और अन्य दूसरे स्वास्थ्यकर्मियों से बहुत अलग थे। इन नये स्वास्थ्यकर्मियों को आँकड़ों में मेडिकलकर्मी नहीं माना जाता था। उनकी गिनती कृषि श्रमिक (बेयरफुट डॉक्टर), उत्पादन श्रमिक (श्रमिक डॉक्टर) या गृहिणी और सेवानिवृत्त लोगों (रेड मेडिकल वर्कर) के तौर पर होती थी और वे भी खुद को यही मानते थे।

इसके अलावा स्वास्थ्य सेवाओं के संगठन में बड़े बदलाव किये गये। इस सम्बन्ध में सबसे बड़ा मुद्दा 1949 के बाद से एक कुलीन मैनेजर और बुद्धिजीवी तबके का विकास होना था, जिसे माओ और उनके साथी एक प्रतिक्रान्ति झुकाव मानते थे। 1971 में और संगठनों की तरह ही स्वास्थ्य संगठनों का नेतृत्व भी 'रिवोल्यूशनरी कमेटियों" के हाथों में आ चुका था। इन कमेटियों में 'जन मुक्ति सेना' के प्रतिनिधि, कैडर सदस्य और स्वास्थ्यकर्मियों के प्रतिनिधि 'थ्री-इन-वन' के अनुपात में होते थे।

सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान वेतन, हैसियत और मेडिकल-कर्मियों के विभिन्न संस्तरों के बीच के अन्तर को कम किया गया। सांस्कृतिक क्रान्ति से पहले सोवियत मॉडल का अनुसरण करने की वजह से अलग-अलग मेडिकल-कर्मियों के वेतन में और सीनियर मेडिकल-कर्मियों और समाज के अन्य लोगों के वेतन में काफ़ी ज़्यादा अन्तर आना शुरू हो गया था। इस क्रान्ति का एक नतीजा यह हुआ कि यह निर्णय लिया गया कि ऊपरी छोर की तनख़्वाहें तब तक के लिए 'फ़्रीज' कर दी जायें, जब तक कि निचले छोर की तनख़्वाहें बढ़ कर उनके बराबर नहीं हो जातीं। जहाँ तक हैसियत और रोल का सवाल है तो ऐसी कोशिशें की गयीं, ताकि स्वास्थ्यकर्मियों के बीच परस्पर बातचीत को बढ़ाया जा सके। उदाहरण के लिए नर्सों ने इलाज की निर्णय-प्रक्रिया में ज़्यादा रोल निभाना शुरू कर दिया और डॉक्टरों के द्वारा नर्सों और दूसरे स्वास्थ्यकर्मियों वाले काम भी किये जाने लगे। इस सबके पीछे उद्देश्य यह था कि स्वास्थ्य संगठनों में व्याप्त पदसोपानिक संरचना को तोड़ा जाये और एक ऐसी व्यवस्था निर्मित की जाये जिसमें मरीजों की भलाई के लिए सभी कर्मी प्रभावी रूप से काम कर सकें।

1971 के अन्त तक मेडिकल स्कूलों में पाठ्यक्रम काफ़ी छोटा हो गया था और उसमें भी ज़्यादा ज़ोर सिद्धान्त के बजाय प्रैक्टिकल पर होता था। मेडिकल के छात्र एकेडमिक या शैक्षणिक आधार पर नहीं - यह माना गया कि इस प्रक्रिया से एक कुलीन बुद्धिजीवी तबका स्थिर हो रहा था - बल्कि साथी वर्करों और किसानों की सिफ़ारिशें (जोकि खुद छात्रों के मनोदृष्टि और विचारधारा पर आधारित होती थी) - पर चुने जाते थे।

प्रेमचन्द के जन्मदिवस (31 जुलाई) के अवसर पर

सम्पत्ति विष की गाँठ

जब तक सम्पत्ति मानव-समाज के संगठन का आधार है, संसार में अन्तरराष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। राष्ट्रों-राष्ट्रों की, भाई-भाई की, स्त्री-पुरुष की लड़ाई का कारण यही सम्पत्ति है। संसार में जितना अन्याय और अनाचार है, जितना द्वेष और मालिन्य है, जितनी मूर्खता और अज्ञानता है, उसका मूल रहस्य यही विष की गाँठ है। जब तक सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा, तब तक मानव-समाज का उद्धार नहीं हो सकता। मज़दूरों के काम का समय घटाइये, बेकारों को गुज़ारा दीजिये, ज़मींदारों और पूँजीपतियों के अधिकारों को घटाइये, मज़दूरों-किसानों के स्वत्वों को बढ़ाइये, सिक्के का मूल्य घटाइये, इस तरह के चाहे जितने सुधार आप करें, लेकिन यह जीर्ण दीवार इस तरह के टीपटाप से नहीं खड़ी रह सकती। इसे नये सिरे से गिराकर उठाना होगा।...

... संसार आदिकाल से लक्ष्मी की पूजा करता चला आता है।... लेकिन संसार का जितना अकल्याण लक्ष्मी ने किया है, उतना शैतान ने नहीं किया। यह देवी नहीं डायन है।

सम्पत्ति ने मनुष्य को क्रीतदास बना लिया है। उसकी सारी मानसिक आत्मिक और दैहिक शक्ति केवल सम्पत्ति के संचय में बीत जाती है। मरते दम तक भी हमें यही हसरत रहती है कि हाय, इस सम्पत्ति का क्या हाल होगा। हम सम्पत्ति के लिए जीते हैं, उसी के लिए मरते हैं। हम विद्वान बनते हैं सम्पत्ति के लिए, गेरुए वस्त्र धारण करते हैं सम्पत्ति के लिए। घी में आलू मिलाकर हम क्यों बेचते हैं? दूध में पानी क्यों मिलाते हैं? भाँति-भाँति के वैज्ञानिक हिंसा-यन्त्र क्यों बनाते हैं? वेश्याएँ क्यों बनती हैं, और डाके क्यों पड़ते हैं? इसका एकमात्र कारण सम्पत्ति है। जब तक सम्पत्तिहीन समाज का संगठन नहीं होगा, जब तक सम्पत्ति व्यक्तिवाद का अन्त न होगा, संसार को शान्ति न मिलेगी।

– **प्रेमचन्द** (*'राष्ट्रीयता और अन्तरराष्ट्रीयता' लेख से*)

पाब्लो नेरूदा के जन्मदिवस (12 जुलाई) के अवसर पर

विजयी लोग

मैं दिल से इस संघर्ष के साथ हूँ
मेरे लोग जीतेंगे
एक-एक कर सारे लोग जीतेंगे

इन दु:खों को
रूमाल की तरह तब-तक निचोड़ा जाता रहेगा
जब-तक कि सारे आँसू
रेत के गलियारों पर
क़ब्रों पर
मनुष्य की शहादत की सीढ़ियों पर
गिर कर सूख नहीं जाएँ
पर, विजय का क्षण नज़दीक है
इसलिए घृणा को अपना काम करने दो
ताकि दण्ड देने वाले हाथ
काँपें नहीं
समय के हाथ को अपने लक्ष्य तक
पहुँचने दो अपनी पूरी गति में
और लोगों को भरने दो ये खाली सड़कें
नये सुनिश्चित आयामों के साथ

यही है मेरी चाहत इस समय के लिए
तुम्हें पता चल जायेगा इसका
मेरा कोई और एजेण्डा नहीं है

अनुवाद : रामकृष्ण पाण्डेय

फ़िलिस्तीन : कुछ कवितांश

हमारे देश में
लोग मेरे दोस्त के बारे में
बहुत बातें करते हैं
कैसे वह गया और फिर नहीं लौटा
कैसे उसने अपनी जवानी खो दी
गोलियों की बौछारों ने
उसके चेहरे और छाती को बींध डाला
बस और मत कहना
मैंने उसका घाव देखा है
मैंने उसका असर देखा है
कितना बड़ा था वह घाव
मैं हमारे दूसरे बच्चों के बारे में सोच रहा हूँ
और हर उस औरत के बारे में
जो बच्चागाड़ी लेकर चल रही है
दोस्तो, यह मत पूछो वह कब आयेगा
बस यही पूछो
कि लोग कब उठेंगे

— o —

आओ ! दुख और जंजीर के साथियों
हम चलें कुछ भी न हारने के लिए
कुछ भी न खोने के लिए
सिवा अर्थियों के

आकाश के लिए हम गायेंगे
भेजेंगे अपनी आशाएँ
कारख़ानों और खेतों और खदानों में
हम गायेंगे और छोड़ देंगे
अपने छिपने की जगह
हम सामना करेंगे सूरज का

हमारे दुश्मन गाते हैं –
"वे अरब हैं... क्रूर हैं..."

हाँ, हम अरब हैं
हम निर्माण करना जानते हैं
हम जानते हैं बनाना
कारख़ाने अस्पताल और मकान
विद्यालय, बम और मिसाईल
हम जानते हैं
कैसे लिखी जाती है सुन्दर कविता
और संगीत...
हम जानते हैं

– **महमूद दरवेश**

फिलिस्तीन
एक समूची ज़मीन है,
और ज़मीन से मुकम्मल प्यार
इसलिए तुम्हारी मार से
बाहर है
फिलिस्तीन आज़ादी
का ज़रूरी भविष्य है
जनरल।
फिलिस्तीन
लोहू और इस्पात
से फूटता हुआ गुलाब
है
कभी न मुरझाने वाला
गुलाब
जो आख़िर में उगेगा
तुम्हारी क़ब्र पर।

– ***गोरख पाण्डेय***

— o —

फिलिस्तीन
वे तबाह नहीं
कर सकते
तुम्हें कभी
भी

क्योंकि
तुम्हारी टूटी
आशाओं के बीच
सलीब पर चढ़े तुम्हारे
भविष्य के बीच
तुम्हारी चुरा ली गयी हँसी के बीच
तुम्हारे बच्चे मुस्कुराते हैं
धवस्त घरों, मकानों और यातनाओं के बीच
ख़ून सनी दीवारों के बीच
ज़िन्दगी और मौत की थरथराहट के बीच

– ***फदवा तुकन***
(फिलिस्तीनी कवयित्री)

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषित डाकघर : आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि : दिनांक 20 प्रत्येक माह

लखनऊ के मोहनलालगंज में 17 जुलाई को एक और युवती भूखे भेड़ियों का शिकार बन गयी। दिल्ली में 16 दिसम्बर 2012 जैसी बर्बरता एक बार फिर दोहरायी गयी। कोई दिन नहीं होता जब किसी-न-किसी के आसपास कोई स्त्री इस हैवानियत का शिकार नहीं होती – छोटी बच्चियों से लेकर उम्रदराज़ औरतें तक सुरक्षित नहीं हैं छुट्टा घूमते इन जानवरों से। देश में हर 2 मिनट पर किसी स्त्री के साथ बलात्कार होता है! सरकार और प्रशासन में बैठे लोग अन्धे-बहरे ही नहीं अपराधों पर

परदा डालने में भागीदार बन चुके हैं। आप कब तक यह सोचकर निश्चिन्त रहेंगे कि आग की आँच अभी आपके आसपास नहीं पहुँची है? चुप बैठे रहेंगे तो बर्बर मर्दवाद को खुला प्रोत्साहन इसी तरह जारी रहेगा और क़ानून-व्यवस्था इसी तरह दबंगों के हाथों गिरवी रहेगी। स्त्रियों के विरुद्ध दरिन्दगी की बढ़ती घटनाओं और इसके बावजूद समाज में छायी चुप्पी और ठण्डेपन पर *कात्यायनी* ने यह कविता मोहनलालगंज की घटना की ख़बर आने पर लिखी थी।
– सम्पादक

यह आर्तनाद नहीं, एक धधकती हुई पुकार है!

जागो मृतात्माओ!
बर्बर कभी भी तुम्हारे दरवाज़े पर दस्तक दे सकते हैं।
कायरो! सावधान!!
भागकर अपने घर पहुँचो और देखो
तुम्हारी बेटी कॉलेज से लौट तो आयी है सलामत,
बीवी घर में महफ़ूज़ तो है।
बहन के घर फ़ोन लगाकर उसकी भी खोज-ख़बर ले लो!
कहीं कोई औरत कम तो नहीं हो गयी है
तुम्हारे घर और कुनबे की?
मोहनलालगंज, लखनऊ के निर्जन स्कूल में जिस युवती को
शिकारियों ने निर्वस्त्र दौड़ा-दौड़ाकर मारा 17 जुलाई को,
उसके जिस्म को तार-तार किया
और वह जूझती रही, जूझती रही, जूझती रही...
...अकेले, अन्तिम साँस तक
और मदद को आवाज़ भी देती रही
पर कोई नहीं आया मुर्दों की उस बस्ती से
जो दो सौ मीटर की दूरी पर थी।
उस स्त्री के क्षत-विक्षत निर्वस्त्र शव की शिनाख़्त नहीं हो सकी है।
पर कायरो! निश्चिन्त होकर बैठो
और पालथी मारकर चाय-पकौड़ी खाओ
क्योंकि तुम्हारे घरों की स्त्रियाँ सलामत हैं।
कुछ क़िस्से गढ़ो, कुछ कल्पना करो, बेशर्मो !
कल दफ़्तर में इस घटना को एकदम नये ढंग से पेश करने के लिए।
बर्बर हमेशा कायरों के बीच रहते हैं।
हर कायर के भीतर अक्सर एक बर्बर छिपा बैठा होता है।
चुप्पी भी उतनी ही बेरहम होती है
जितनी गोद-गोदकर, जिस्म में तलवार या रॉड भोंककर
की जाने वाली हत्या।
हत्या और बलात्कार के दर्शक,
स्त्री आखेट के तमाशाई
दुनिया के सबसे रुग्ण मानस लोगों में से एक होते हैं।
16 दिसम्बर 2012 को चुप रहे
उन्हें 17 जुलाई 2014 का इन्तज़ार था
और इसके बीच के काले अँधेरे दिनों में भी
ऐसा ही बहुत कुछ घटता रहा।
कह दो मुलायम सिंह कि 'लड़कों से तो ग़लती हो ही जाती है,
इस बार कुछ बड़ी ग़लती हो गयी।'
धर्मध्वजाधारी कूपमण्डूको, भाजपाई फासिस्टो,
विहिप, श्रीराम सेने के गुण्डो, नागपुर के हाफ़पैण्टियो,
डाँटो-फटकारो औरतों को
दौड़ाओ डण्डे लेकर
कि क्यों वे इतनी आज़ादी दिखलाती हैं सड़कों पर
कि मर्द जात को मजबूर हो जाना पड़ता है
जंगली कुत्ता और भेड़िया बन जाने के लिए।

मुल्लाओ! कुछ और फ़तवे जारी करो
औरतों को बाड़े में बन्द करने के लिए,
शरिया क़ानून लागू कर दो,
"नये ख़लीफ़ा" अल बगदादी का फ़रमान भी ले आओ,
जल्दी करो, नहीं तो हर औरत
लल द्यद बन जायेगी या तस्लीमा नसरीन की मुरीद हो जायेगी।
बहुत सारी औरतें बिगड़ चुकी हैं
इन्हें संगसार करना है, चमड़ी उधेड़ देनी है इनकी,
ज़िन्दा दफ़न कर देना है
त्रिशूल, तलवार, नैजे, खंजर तेज़ कर लो,
कोड़े उठा लो, बागों में पेड़ों की डालियों से फाँसी के फँदे लटका दो,
तुम्हारी कामाग्नि और प्रतिशोध को एक साथ भड़काती
कितनी सारी, कितनी सारी, मगरूर, बेशर्म औरतें
सड़कों पर निकल आयी हैं बेपर्दा, बदनदिखाऊ कपड़े पहने,
हँसती-खिलखिलाती, नज़रें मिलाकर बात करती,
अपनी ख़्वाहिशें बयान करती!
तुम्हें इस सभ्यता को बचाना है
तमाम बेशर्म-बेग़ैरत-आज़ादख़्याल औरतों को सबक़ सिखाना है।
हर 16 दिसम्बर, हर 17 जुलाई
देवताओं का कोप है
ख़ुदा का कहर है
बर्बर बलात्कारी हत्यारे हैं देवदूत
जो आज़ाद होने का पाप कर रही औरतों को
सज़ाएँ दे रहे हैं इसी धरती पर
और नर्क से भी भयंकर यन्त्रणा के नये-नये तरीक़े आज़माकर
देवताओं को ख़ुश कर रहे हैं।

बहनो! साथियो!!
डरना और दुबकना नहीं है किसी भी बर्बरता के आगे।
बकने दो मुलायम सिंह, बाबूलाल गौर और तमाम ऐसे
मानवद्रोहियों को, जो उसी पूँजी की सत्ता के
राजनीतिक चाकर हैं, जिसकी रुग्ण-बीमार संस्कृति
के बजबजाते गटर में बसते हैं वे सूअर
जो स्त्री को मात्र एक शरीर के रूप में देखते हैं।
इसी पूँजी के सामाजिक भीटों बाँबियों-झाड़ियों में
वे भेड़िये और लकड़बग्घे पलते हैं
जो पहले रात को, लेकिन अब दिन-दहाड़े
हमें अपना शिकार बनाते हैं।
क़ानून-व्यवस्था को चाक-चौबन्द करने से भला क्या होगा
जब खाकी वर्दी में भी भेड़िये घूमते हों
और लकड़बग्घे तरह-तरह की टोपियाँ पहनकर
संसद में बैठे हों?

मोमबत्तियाँ जलाने और सोग मनाने से भी कुछ नहीं होगा।
अपने हृदय की गहराइयों में धधकती आग को
ज्वालामुखी के लावे की तरह सड़कों पर बहने देना होगा।
निर्बन्ध कर देना होगा विद्रोह के प्रबल वेगवाही ज्वार को।
मुट्ठियाँ ताने एक साथ, हथौड़े और मूसल लिए हाथों में
निकलना होगा
16 दिसम्बर और 17 जुलाई के ख़ून जिन जबड़ों पर दीखें,
उन पर सड़क पर ही फ़ैसला सुनाकर
सड़क पर ही उसे तामील कर देना होगा।

बहनो! साथियो!!
मुट्ठियाँ तानकर अपनी आज़ादी और अधिकारों का
घोषणापत्र एक बार फिर जारी करो,
धर्मध्वजाधारी प्रेतों और पूँजी के पाण्डुर पिशाचों के ख़िलाफ़।
मृत परम्पराओं की सड़ी-गली बास मारती लाशों के
अन्तिम संस्कार की घोषणा कर दो।
चुनौती दो ताकि बौखलाये बर्बर बाहर आयें खुले में।
जो शिकार करते थे, उनका शिकार करना होगा।

बहनो! साथियो!!
बस्तियों-मोहल्लों में चौकसी दस्ते बनाओ!
धावा मारो नशे और अपराध के अड्डों पर!
घेर लो स्त्री-विरोधी बकवास करने वाले नेताओं-धर्मगुरुओं को सड़कों पर
अपराधियों को लोक पंचायत बुलाकर दण्डित करो!
अगर तुम्हे बर्बर मर्दवाद का शिकार होने से बचना है
और बचाना है अपनी बच्चियों को
तो यही एक राह है, और कुछ नहीं, कोई भी नहीं।

बहनो! साथियो!!
सभी मर्द नहीं हैं मर्दवादी।
जिनके पास वास्तव में सपना है समतामूलक समाज का
वे स्त्रियों को मानते हैं बराबर का साथी,
जीवन और युद्ध में।
वे हमारे साथ होंगे हमारी बग़ावत में, यक़ीन करो!
श्रम-आखेटक समाज ही स्त्री आखेट का खेल रचता है।
हमारी मुक्ति की लड़ाई है उस पूँजीवादी बर्बरता से
मुक्ति की लड़ाई की ही कड़ी,
जो निचुड़ी हुई हड्डियों की बुनियाद पर खड़ा है।
इसलिए बहनो! साथियो!!
कड़ी से कड़ी जोड़ो! मुट्ठियों से मुट्ठियाँ!
सपनों से सपने! संकल्पों से संकल्प!
दस्तों से दस्ते!
और आगे बढ़ो बर्बरों के अड्डों की ओर!

18 जुलाई 2014

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006